चन्द्रगुप्त मौर्य्य

(ऐतिहासिक नाटक)

जयशङ्कर प्रसाद

ग्रन्थ-संख्या—२१

प्रकाशक और विक्रेता
भारती-भंडार
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

ग्यारहवां संस्करण
सवत् २०१५ वि०
मूल्य ३/००

मुद्रक
चन्द्रप्रकाश ऐरन
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

श्रीः

प्रकाशक का वक्तव्य

'प्रसाद' जी न केवल कवि, कहानी-लेखक, उपन्यासकार अथवा नाटककार ही हैं; बल्कि वे इतिहास के मौलिक अन्वेषक भी है। हिन्दी मे चन्द्रगुप्त मौर्य के सम्बन्ध मे विशद् ऐतिहासिक विवेचना सब से पहले 'प्रसाद' जी ने ही की थी—यह उस समय की बात है, जब चाणक्य-लिखित अर्थ-शास्त्र का आविष्कार-मात्र हुआ था, एव पुरातत्त्व के देशी अथवा विदेशी विद्वान्, चन्द्रगुप्त के विषय मे उदासीन-से थे। स० १९६६ मे 'प्रसाद' जी ने अपनी यह विवेचना 'चन्द्रगुप्त मौर्य्य' के नाम से प्रकाशित की थी, जो प्रस्तुत नाटक के प्रारम्भ मे सम्मिलित है।

इस उत्कृष्ट नाटक के लिखने की भावना भी 'प्रसाद' जी के मन मे उसी समय से बनी हुई थी—इसी के नमूने पर एक छोटा-सा रूपक 'कल्याणी-परिणय' के नाम से उन्होने लिखा भी, जो अगस्त, १९१२ में 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' मे प्रकाशित हुआ था, किन्तु वह हिन्दी का अनुवाद-युग था और सन् १७ मे डी० एल० राय का चन्द्रगुप्त अनुवादित होकर हिन्दी मे आ गया। अतएव, इस मौलिक कृति की ओर लोग उतने आकृष्ट न हुए, जितने उस अनुवाद के प्रति। फलत वही अनुवाद हेर-फेर के साथ कई रूपो मे हिन्दी-पाठको के सामने लाया गया। फिर भी 'प्रसाद' जी की मौलिक प्रतिभा इस सुन्दर ऐतिहासिक नाटक को अपने ढग पर लिखने मे प्रवृत्त हुई। और बडी प्रसन्नता की बात है कि वे अपने प्रयास मे सफल ही नही, पूर्ण सफल हुए है। भाषा, भाव, चरित्र-चित्रण, सभी दृष्टियों से इस नाटक का अधिकाश इतना मार्मिक हुआ है कि 'प्रसाद' जी की लेखनी पर अत्यन्त मुग्ध हो उठना पडता है। कुल

मिलाकर हमारी समझ मे 'प्रसाद' जी के बड़े नाटको मे यह सर्वश्रेष्ठ है। इसमे 'कल्याणी-परिणय' भी यथा-प्रसंग परिवर्तित और परिवर्द्धित होकर सम्मिलित हो गया है।

यह ग्रंथ दो वर्ष पहले ही प्रेस मे दे दिया गया था, किन्तु ऐसे कारण आते गए कि यह अवके पहले प्रकाशित न हो सका ; हमे इसका खेद है।

अस्तु, यह वर्षो का अन्वेषण-पूर्ण उद्योग आज इस रूप मे हम पाठको के सामने वडे हर्ष के साथ उपस्थित करते है।

रथयात्रा, '८८ (पहले संस्करण से)

प्रिय सुहृद्वर

राय कृष्णदास

को

प्रीति-उपहार

चन्द्रगुप्त

अंगण-वेदी वसुधा कुल्या जलधि, स्थली च पातालम् ।
वल्मीकश्च सुमेरुः, कृत-प्रतिज्ञस्य वीरस्य ॥

—हर्षचरित
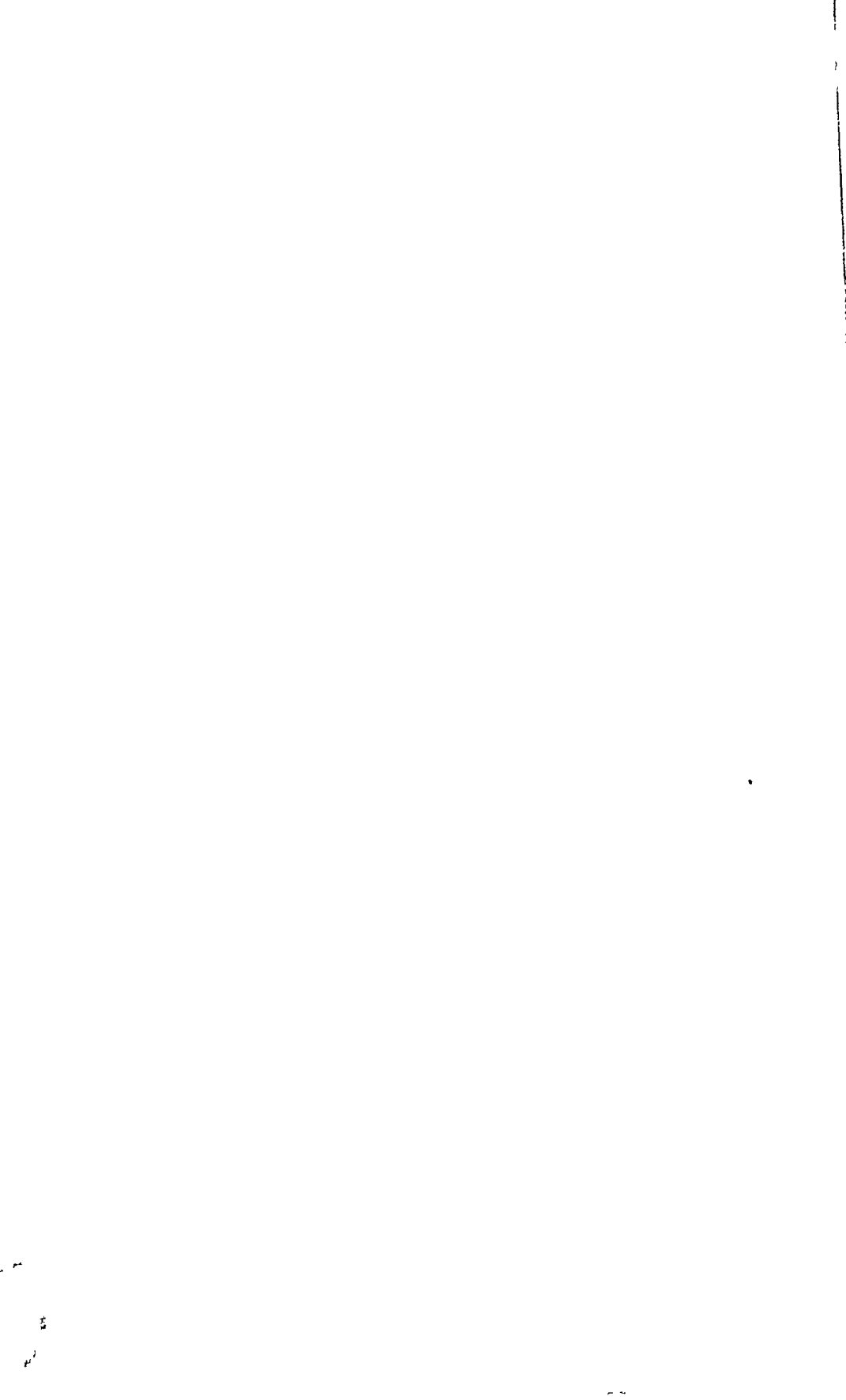
मौर्य्य-वंश

प्राचीन आर्य नृपतिगण का साम्राज्य उस समय नही रह गया था । चन्द्र और सूर्य्यवश की राजधानियाँ अयोध्या और हस्तिनापुर, विकृत रूप मे भारत के वक्षस्थल पर अपने साधारण अस्तित्व का परिचय दे रही थी । अन्य प्रचण्ड वर्बर जातियो की लगातार चढाइयो से पवित्र सप्तसिन्धु प्रदेश मे आर्यो के साम-गान का पवित्र स्वर मन्द हो गया था । पाञ्चालो की लीला-भूमि तथा पजाव मिश्रित जातियो से भर गया था । जाति, समाज और धर्म्म सब मे एक विचित्र मिश्रण और परिवर्तन-सा हो रहा था । कही आभीर और कही ब्राह्मण, राजा वन बैठे थे । यह सब भारत-भूमि की भावी दुर्दशा की सूचना क्यो थी ? इसका उत्तर केवल यही आपको मिलेगा, कि––धर्म-सम्वन्धी महापरिवर्तन होनेवाला था । वह बुद्ध से प्रचारित होने वाले बौद्ध धर्म की ओर भारतीय आर्य्य लोगो का झुकाव था, जिसके लिए वे लोग प्रस्तुत हो रहे थे ।

उस धर्म्मबीज को ग्रहण करने के लिए कपिल, कणाद आदि ने आर्य्यों का हृदय-क्षेत्र पहले ही से उर्वर कर दिया था, किन्तु यह मत सर्वसाधारण में अभी नही फैला था । वैदिक कर्मकाण्ड की जटिलता से उपनिषद् तथा साख्य आदि शास्त्र आर्य्य लोगो को सरल और सुगम प्रतीत होने लगे थे । ऐसे ही समय पार्श्वनाथ ने एक जीव-दयामय धर्म प्रचारित किया और वह धर्म बिना किसी शास्त्र-विशेष के, वेद तथा प्रमाण की उपेक्षा करते हुए फैलकर शीघ्रता के साथ सर्वसाधारण से सम्मान पाने लगा । आर्य्यो की राजसूय और अश्वमेध आदि शक्ति वढानेवाली क्रियाये शून्य स्थान मे ध्यान और चिन्तन के रूप मे परिवर्तित हो गई , अहिसा का प्रचार हुआ । इससे भारत की उत्तरी सीमा

में स्थित जातियो को भारत मे आकर उपनिवेश स्थापित करने का उत्साह हुआ। दार्शनिक मत के प्रबल प्रचार से भारत मे धर्म, समाज और साम्राज्य, सब मे विचित्र और अनिवार्य परिवर्तन हो रहा था। बुद्धदेव के दो-तीन शताब्दी पहले ही दार्शनिक मतो ने, उन विशेष बन्धनो को, जो उस समय के आर्य्यों को उद्विग्न कर रहे थे, तोड़ना आरम्भ किया। उस समय ब्राह्मण वल्कलधारी होकर काननो में रहना ही अच्छा न समझते, वरन् वे भी राज्यलोलुप होकर स्वतन्त्र छोटे-छोटे राज्यो के अधिकारी बन बैठे। क्षत्रियगण राजदण्ड को बहुत भारी तथा अस्त्र-शस्त्रो को हिंसक समझकर उनकी जगह जप-चक्र हाथ मे रखने लगे। वैश्य लोग भी व्यापार आदि मे मनोयोग न देकर, धर्माचार्य की पदवी को सरल समझने लगे। और तो क्या, भारत के प्राचीन दास भी अन्य देशो से आई हुई जातियो के साथ मिल कर दस्यु-वृत्ति करने लगे।

वैदिक धर्म पर क्रमश बहुत-से आघात हुए, जिनसे वह जर्जर हो गया। कहा जाता है, कि उस समय धर्म की रक्षा करने मे तत्पर ब्राह्मणो ने अर्बुदगिरि पर एक महान् यज्ञ करना आरम्भ किया और उस यज्ञ का प्रधान उद्देश्य वर्णाश्रम धर्म तथा वेद की रक्षा करना था। चारो ओर से दल-के-दल क्षत्रियगण—जिनका युद्ध ही आमोद था—जुटने लगे और वे ब्राह्मण धर्म को मानकर अपने आचार्यो को पूर्ववत् सम्मानित करने लगे। जिन जातियो को अपने कुल की क्रमागत वशमर्य्यादा भूल गई थी, वे तपस्वी और पवित्र ब्राह्मणो के यज्ञ से सस्कृत होकर चार जातियो मे विभाजित हुईं। इनका नाम अग्निकुल हुआ। सम्भवत इसी समय मे तक्षक या नागवशी भी क्षत्रियो की एक श्रेणी मे गिने जाने लगे।

यह धर्म-क्रान्ति भारतवर्ष में उस समय हुई थी, जब जैनतीर्थकर पार्श्वनाथ हुए, जिनका समय ईसा से ८०० वर्ष पहले माना जाता है। जैन लोगो के मत से भी इस समय मे विशेष अन्तर नही है। ईसा

के आठ सौ वर्ष पूर्व यह बडी घटना भारतवर्ष मे हुई, जिसने भारतवर्ष मे राजपूत जाति बनाने मे बडी सहायता दी और समय-समय पर उन्ही राजपूत क्षत्रियो ने बडे-बडे कार्य किये। उन राजपुत्रो की चार जातियो मे प्रमुख परमार जाति थी और जहाँ तक इतिहास पता देता है—उन लोगो ने भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशो मे फैलकर नवीन जनपद और अक्षय कीर्ति उपार्जित की। धीरे-धीरे भारत के श्रेष्ठ राज्यवर्गों मे इनकी गणना होने लगी। यद्यपि इस कुल की भिन्न-भिन्न पैंतीस शाखाएँ है; पर सब मे प्रधान और लोक-विश्रुत मौर्य नाम की शाखा हुई। भारत का शृंखलाबद्ध इतिहास नही है, पर बौद्धो के बहुत-से शासन-सम्बन्धी लेख और उनकी धर्म-पुस्तको से हमे बहुत सहायता मिलेगी, क्योकि उस धर्म को उन्नति के शिखर पर पहुँचानेवाला उसी मौर्य्य-वश का सम्राट् अशोक हुआ है। बौद्धो के विवरण से ज्ञात होता है, कि शैशुनाक-वशी महानन्द के सकर-पुत्र महापद्म के पुत्र धननन्द से मगध का सिंहासन लेनेवाला चन्द्रगुप्त मोरियो के नगर का राजकुमार था। यह मोरियो का नगर पिप्पली-कानन था, और पिप्पली-कानन के मौर्य्य नृपति लोग भी बुद्ध के शरीर-भस्म के भाग लेनेवालो मे एक थे।

मौर्य्य लोगो की उस समय भारत मे कोई दूसरी राजधानी न थी। यद्यपि इस बात का पता नही चलता, कि इस वश के आदिपुरुषो मे से किसने पिप्पली-कानन मे मौर्य्यों की पहली राजधानी स्थापित की, पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है, कि ईसा से ५०० वर्ष या इससे पहले यह राजधानी स्थापित हुई और मौर्य्य-जाति, इतिहास-प्रसिद्ध कोई ऐसा कार्य तब तक नही कर सकी, जब तक प्रतापी चन्द्रगुप्त उसमे न उत्पन्न हुआ। उसने मौर्य्य शब्द को, जो अब तक भारतवर्ष के एक कोने मे पडा हुआ अपना जीवन अपरिचित रूप से बिता रहा था, केवल भारत ही नही, वरन् ग्रीस आदि समस्त देशो मे परिचित करा दिया। ग्रीक इतिहास-लेखको ने अपनी भ्रमपूर्ण लेखनी से इस

चन्द्रगुप्त के वारे में कुछ तुच्छ वाते लिख दी है, जो कि विलकुल असम्वद्ध ही नही, वरन् उलटी है। जैसे—'चन्द्रगुप्त नाइन के पेट से पैदा हुआ महानन्दिन का लड़का था।' पर यह वात पोरस ने महापद्म और घननन्द आदि के लिए कही है * और वही पीछे से चन्द्रगुप्त के लिए भ्रम से यूनानी ग्रन्थकारो ने लिख दी है। ग्रीक इतिहास-लेखक Plutarch लिखता है, कि चन्द्रगुप्त मगध-सिहासन पर आरोहण करने के वाद कहता था कि सिकन्दर महापद्म को अवश्य जीत लेता, क्योकि यह नीचजन्मा होने के कारण जन-समाज मे अपमानित तथा घृणित था। लिवानियस आदि लेखको ने तो यहाँ तक भ्रम डाला है, कि पोरस ही नापित से पैदा हुआ था। पोरस ने ही यह वात कही थी, इससे वही नापितपुत्र समझा जाने लगा, तो क्या आश्चर्य है कि तक्षशिला मे जव चन्द्रगुप्त ने यही वात कही थी, तो वही नापित-पुत्र समझा जाने लगा हो। ग्रीको के भ्रम से ही यह कलक उसे लगाया गया है।

एक वात और भी उस समय तक निर्धारित नही हुई थी, कि Sandrokottus और Zandrames भिन्न-भिन्न दो व्यक्तियो का या एक का ही नाम है। यह तो H. H. Wilson ने विष्णु-पुराण आदि के सम्पादन-समय मे सन्ड्रोकोटस और चन्द्रगुप्त को

---

* Alexander who did not at first believe this inquired from King Porus whether this account of the power of Zandrames was true and he was told by Porus that it was true, but that the king was but of mean and obscure extraction accounted to be a barber's son, that the queen, however, had fallen in love with the barber, had murdered her husband and that the kingdom had thus devolved upon Zandrames.

DIODORUS SICUIUIS

in History of A S. Literature

एक मे मिलाया। यूनानी लेखको ने लिखा है कि Zandrames ने बहुत सेना लेकर सिकन्दर से मुकाबिला किया। उन्होने उस प्राच्य देश के राजा Zandrames को, जो नन्द था, भूल से चन्द्रगुप्त समझ लिया—जो कि तक्षशिला मे एक बार सिकन्दर से मिला था और बिगडकर लौट आया था। चन्द्रगुप्त और सिकन्दर की भेट हुई थी, इसलिए भ्रम से वे लोग Sandrokottus और Zandrames को एक समझकर नन्द की कथा को चन्द्रगुप्त के पीछे जोडने लगे।

चन्द्रगुप्त ने पिप्पली-कानन के कोने से निकलकर पाटलीपुत्र पर अधिकार किया। मेगास्थनीज ने इस नगर का वर्णन किया है और फारस की राजधानी से बढ कर वतलाया है। अस्तु, मौर्य्यो की दूसरी राजधानी पाटलीपुत्र हुई।

पुराणो के देखने से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त के बाद नौ राजा उसके वश मे मगध के सिहासन पर बैठे। उनमे अन्तिम राजा वृहद्रथ हुआ, जिसे मारकर पुष्यमित्र—जो शुग-वश का था—मगध के सिहासन पर बैठा, किन्तु चीनी यात्री हुएनत्साग, जो हर्षवर्धन के समय मे आया था, लिखता है—"मगध का अन्तिम अशोकवशी पूर्णवर्म्मा हुआ, जिसके समय में शशाकगुप्त ने बोधिद्रुम को विनष्ट किया था। और उसी पूर्णवर्म्मा ने बहुत-से गौ के दुग्ध से उस उन्मूलित बोधिद्रुम को सीचा, जिससे वह शीघ्र ही फिर बढ गया।" यह बात प्राय सब मानते है कि मौर्य्यवश के नौ राजाओ ने मगध के राज्यासन पर बैठकर उसके अधीन के समस्त भूभाग पर शासन किया। जब मगध के सिहासन पर से मौर्य्यवशियो का अधिकार जाता रहा, तब उन लोगो ने एक प्रादेशिक राजधानी को अपनी राजधानी बनाया। प्रबल प्रतापी चन्द्रगुप्त का राज्य चार प्रादेशिक शासको से शासित होता था। अवन्ती, स्वर्णगिरि, तोषली और तक्षशिला में अशोक के चार सूबेदार रहा करते थे। इनमे अवन्ती के सूबेदार प्राय. राजवश के होते थे। स्वय अशोक उज्जैन का सूबेदार रह चुका था। सम्भव है कि

मगध का शासन डावाँडोल देखकर मगध के आठवें मौर्य नृपति सोमशर्मा के किसी भी राजकुमार ने, जो कि अवन्ती का प्रादेशिक शासक रहा हो, अवन्ती को प्रधान राजनगर वना लिया हो, क्योकि उसकी एक ही पीढी के वाद मगध के सिंहासन पर शुंगवंशियो का अधिकार हो गया। यह घटना सम्भवतः १७५ ई० पूर्व हुई होगी, क्योकि १८३ मे सोमशर्मा मगध का राजा हुआ। भट्टियो के ग्रन्थो मे लिखा है कि मौर्य्य-कुल के मूलवश से उत्पन्न हुए परमार नृपतिगण ही उस समय भारत के चक्रवर्ती राजा थे, और वे लोग कभी-कभी उज्जयिनी मे ही अपनी राजधानी स्थापित करते थे।

टाड ने अपने राजस्थान मे लिखा है कि जिस चन्द्रगुप्त की महान् प्रतिष्ठा का वर्णन भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षिरो से लिखा है, उस चन्द्रगुप्त का जन्म पवाँर-कुल की मौर्य्य शाखा मे हुआ है। सम्भव है कि विक्रम के सौ या कुछ वर्ष पहले जव मौर्य्यों की राजधानी पाटलीपुत्र से हटी, तव इन लोगो ने उज्जयिनी को प्रधानता दी और यही पर अपने एक प्रादेशिक शासक की जगह राजा की तरह रहने लगे।

राजस्थान में पवाँर-कुल के मौर्य्य नृपतिगण ने इतिहास मे प्रसिद्ध वडे-वड़े कार्य किये, किन्तु ईसा की पहली शताव्दी से लेकर ५वी शताव्दी तक प्राय उन्हे गुप्तवशी तथा अपर जातियो से युद्ध करना पडा। भट्टियो ने लिखा है कि उस समय मौर्य्य-कुल के परमार लोग कभी उज्जयिनी को और कभी राजस्थान की धारा को अपनी राजधानी वनाते थे।

इसी दीर्घकालव्यापिनी अस्थिरता मे मौर्य्य लोग जिस तरह अपनी प्रभुता वनाये रहे, उस तरह किसी वीर और परिश्रमी जाति के सिवा दूसरा नही कर सकता। इसी जाति के महेश्वर नामक राजा ने विक्रम के ६०० वर्ष वाद कार्तवीर्य्यार्जुन की प्राचीन महिष्मती को जो नर्मदा के तट पर थी, फिर से वसाया और उसका नाम महेश्वर रखा, उन्ही का पौत्र दूसरा भोज हुआ। चित्राग मौर्य्य ने भी थोडे ही समय के

अन्तर मे चित्रकूट (चित्तौर) का पवित्र दुर्ग बनवाया, जो भारत के स्मारक-चिह्नो मे एक अपूर्व वस्तु है।

गुप्तवंशियो ने जब अवन्ती मौर्य्य लोगो से ले ली, उसके बाद वीर मौर्य्यों के उद्योग से कई नगरी बसाई गई और कितनी ही उन लोगो ने दूसरे राजाओ से ले ली। अर्बुदगिरि के प्राचीन भूभाग पर उन्ही का अधिकार था। उस समय राजस्थान के सब अच्छे-अच्छे नगर प्राय मौर्य्य-राजगण के अधिकार मे थे। विक्रमीय सवत् ७८० तक मौर्य्यो की प्रतिष्ठा राजस्थान मे थी और उस अन्तिम प्रतिष्ठा को तो भारतवासी कभी न भूलेगे जो चित्तौरपति मौर्य्य-नरनाथ मान-सिह ने खलीफा वलीद को राजस्थान से विताडित करके प्राप्त की थी।

मानमौर्य्य के बनवाये हुए मानसरोवर मे एक शिलालेख है, जिसमे लिखा है कि—"महेश्वर को भोज नाम का पुत्र हुआ था, जो धारा और मालव का अधीश्वर था, उसी से मानमौर्य्य हुए।" इतिहास मे ७८४ सवत् मे वाप्पारावल का चित्तौर अधिकार करना लिखा है, तो इसमे सदेह नही रह जाता कि यही मानमौर्य्य वाप्पारावल के द्वारा प्रवञ्चित हुआ।

महाराज मान प्रसिद्ध वाप्पादित्य के मातुल थे। बाप्पादित्य ने नागेन्द्र से भाग कर मानमौर्य्य के यहाँ आश्रय लिया, उनके यहाँ सामन्त-रूप से रहने लगे। धीरे-धीरे उनका अधिकार सब सामन्तो से बढा, तब सब सामन्त उनसे डाह करने लगे। किन्तु वाप्पादित्य की सहायता से मानमौर्य्य ने यवनो को फिर भी पराजित किया। पर उन्ही वाप्पादित्य की दोधारी तलवार मानमौर्य्य के लिए कालभुजगिनी और मौर्य्य-कुल के लिए तो मानो प्रलय-समुद्र की एक बडी लहर हुई। मान बाप्पादित्य के हाथ से मारे गये और राजस्थान मे मौर्य्य-कुल का अब कोई राजा न रहा। यह घटना विक्रमीय सवत् ७८४ की है।

कोटा के कण्वाश्रम के शिवमन्दिर मे एक शिलालेख संवत् ७९५ का पाया गया है। उससे मालूम होता है कि आठवी शताब्दी

के अन्त तक राजपूताना और मालवा पर मौर्य्य नृपति का अधिकार रहा ।

प्रसिद्ध मालवेश भोज भी परमारवश का था जो १०३५ मे हुआ। इस प्रकार परमार और मौर्य्य-कुल पिछले काल के विवरणो से एक मे मिलाये जाते है। इस वात की शका हो सकती है कि मौर्य्य-कुल की मूल शाखा परमार का नाम प्राचीन वौद्धो की पुस्तको मे क्यो नही मिलता। परन्तु यह देखा जाता है कि जव एक विशाल जाति से एक छोटा-सा कुल अलग होकर अपनी स्वतत्र सत्ता वना लेता है, तव प्राय. वह अपनी प्राचीन सज्ञा को छोडकर नवीन नाम को अधिक प्रधानता देता है। जैसे इक्ष्वाकुवशी होने पर भी वुद्ध, शाक्य नाम से पुकारे गये और, जव शिलालेखो मे मानमौर्य्य और परमार भोज के हम एक ही वश मे होने का प्रमाण पाते है, तव कोई सदेह नही रह जाता। हो सकता है, मौर्य्यो के वौद्धयुग के वाद जव इस शाखा का हिन्दूधर्म की ओर अधिक झुकाव हुआ हो तो परमार नाम फिर से लिया जाने लगा हो, क्योकि मौर्य्य लोग वौद्ध-प्रेम के कारण अधिक कुख्यात हो चुके थे। वौद्ध-विद्वेष के कारण अशोक के वश को अक्षत्रिय तथा नीच कुल का प्रमाणित करने के लिए मध्य-काल मे अधिक उत्सुकता देखी जाती है, किन्तु यह अस्वीकार नही किया जा सकता है कि प्रसिद्ध परमार-कुल और मौर्य्य-वश परस्पर सम्वद्ध है।

इस प्रकार अज्ञात पिप्पली-कानन के एक कोने से निकल कर विक्रम-सवत् के २६४ वर्प पहले से ७८४ वर्प वाद तक मौर्य्य लोगो ने पाटलीपुत्र, उज्जैन, धारा, महेश्वर, चित्तौर (चित्रकूट) और अर्वुदगिरि आदि मे अलग-अलग अपनी राजधानियाँ स्थापित की और लगभग १०५० वर्प तक वे लोग मौर्य्य नरपति कहकर पुकारे गये।

पिप्पली-कानन के मौर्य्य

मौर्य्य-कुल का सवसे प्राचीन स्थान पिप्पली-कानन था। चन्द्रगुप्त

के आदिपुरुष मौर्य्य इसी स्थान के अधिपति थे और यह राजवश गौतमबुद्ध के समय मे प्रतिष्ठित गिना जाता था, क्योकि बौद्धो ने महात्मा बुद्ध के शरीर-भस्म का एक भाग पाने वालो मे पिप्पली-कानन के मौर्यो का उल्लेख किया है। पिप्पली-कानन वस्ती जिले मे नैपाल की सीमा पर है। वहाॅ ढूह और स्तूप है, इसे अव पिपरहियाकोट कहते है। फाहियान स्तूप आदि देख कर भ्रमवश इसी को पहले कपिल-वस्तु समझा था। मि० पीपी ने इसी स्थान को पहले खुदवाया और बुद्धदेव की धातु तथा और जो वस्तुएँ मिली, उन्हे गवर्नमेट को अर्पित किया था तथा धातु का प्रधान अश सरकार ने स्याम के राजा को दिया।

इसी पिप्पली-कानन मे मौर्य्य लोग अपना छोटा-सा राज्य स्वतन्त्रता से सचालित करते थे, और ये क्षत्रिय थे, जैसा कि महावश के इस अवतरण से सिद्ध होता है "मोरियान खतियान वसजात सिरीधर। चन्द्रगुप्तो सिपज्जत चाणक्को ब्रह्मणोततो।" हिन्दू नाटककार विशाखदत्त ने चन्द्रगुप्त को प्राय वृषल कहकर सम्बोधित कराया है, इससे उक्त हिन्दू-काल की मनोवृत्ति ही ध्वनित होती है। वस्तुत वृषल शब्द से तो उनका क्षत्रियत्व और भी प्रमाणित्व होता है, क्योकि—

शनकैस्तु क्रियालोपादिमा क्षत्रियजातय
वृषलत्व गता लोके ब्राह्मणानामदर्शनात् ।

से यही मालूम होता है कि जो क्षत्रिय-लोग वैदिक क्रियाओ से उदासीन हो जाते थे, उन्हे धार्मिक दृष्टि से वृषलत्व प्राप्त होता था। वस्तुत वे जाति से क्षत्रिय थे। स्वय अशोक मौर्य्य अपने को क्षत्रिय कहता था।

यह प्रवाद भी अधिकता से प्रचलित है कि मौर्य्य-वश मुरा नाम की शूद्रा से चला है और चन्द्रगुप्त उसका पुत्र था। यह भी कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य्य शूद्रा मुरा से उत्पन्न हुआ नन्द ही का पुत्र था। किन्तु V A Smith लिखते है—"But it is perhaps more probable that the dynasties of Mouryas and Nandas were not connected by blood."

तात्पर्य्य कि—यह अधिक सभव है कि नन्दों और मौर्य्यो का कोई रक्त-सम्बन्ध न था। Maxmuller भी लिखते है—"The statement of Wilford that mourya meant in Sanskrit the offspring of a barber and Sudra woman has never been proved."

मुरा शूद्रा तक ही न रही, एक नापित भी आ गया। मौर्य्य शब्द की व्याख्या करने जाकर कैसा भ्रम फैलाया गया है। मुरा से मौर और मौरेय बन सकता है, न कि मौर्य्य। कुछ लोगो का अनुमान है कि शुद्ध शब्द मोरिय है, उससे सस्कृत शब्द मौर्य्य बना है ; परन्तु, यह बात ठीक नही, क्योकि अशोक के कुछ ही समय बाद के पतञ्जलि ने स्पष्ट मौर्य्य शब्द का उल्लेख किया है —"मौर्य्यैर्हिरण्यार्थिभिरर्चा प्रकल्पिता" (भाष्य ५-३-९९) इसीलिए मौर्य्य शब्द अपने शुद्ध रूप मे सस्कृत का है न कि कही से लेकर सस्कार किया गया है। तब यह तो स्पष्ट है कि मौर्य्य शब्द अपनी संस्कृत-व्युत्पत्ति के द्वारा मुरा का पुत्रवाला अर्थ नहीं प्रकट करता। यह वास्तव मे कपोल-कल्पना है और यह भ्रम यूनानी लेखकों से प्रचारित किया गया है, जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है। अर्थ-कथा मे मौर्य्य शब्द की एक और व्याख्या मिलती है। शाक्य लोगो मे आपस मे बुद्ध के जीवन-काल मे ही एक झगड़ा हुआ और कुछ लोग हिमवान् के पिप्पली-कानन-प्रदेश मे अपना नगर बसाकर रहने लगे। उस नगर के सुन्दर घरो पर क्रौञ्च और मोर पक्षी के चित्र अकित थे, इसलिए वहाँ के शाक्य लोग मोरिय कहलाए। कुछ सिक्के बिहार मे ऐसे भी मिले है, जिनपर मयूर का चिह्न अकित है। इससे अनुमान किया जाता है कि वे मौर्य्य-काल के सिक्के है। किन्तु इससे भी उनके क्षत्रिय होने का प्रमाण ही मिलता है।

हिन्दी 'मुद्राराक्षस' की भूमिका मे भारतेन्दुजी लिखते है कि—"महानन्द जो कि नन्दवश का था, उसमे नौ पुत्र उत्पन्न हुए। बडी रानी से आठ और मुरा नाम्नी नापित-कन्या मे नवाँ चन्द्रगुप्त।

महानन्द से और उसके मन्त्री शकटार से वैमनस्य हो गया, इस कारण मन्त्री ने चाणक्य-द्वारा महानन्द को मरवा डाला और चन्द्रगुप्त को चाणक्य ने राज्य पर बिठाया, जिसकी कथा 'मुद्राराक्षस' मे प्रसिद्ध है।"—किन्तु यह भूमिका जिसके आधार पर लिखी हुई है, वह मूल सस्कृत मुद्राराक्षस के टीकाकार का लिखा हुआ उपोद्घात है। भारतेन्दुजी ने उसे भी अविकल ठीक न मानकर 'कथा-सरित्सागर' के आधार पर उसका बहुत-सा सशोधन किया है। कही-कही उन्होने कई कथाओ का उलट-फेर भी कर दिया है। जैसे हिरण्यगुप्त के रहस्य के बतलाने पर राजा के फिर शकटार से प्रसन्न होने की जगह विचक्षणा के उत्तर से प्रसन्न होकर शकटार को छोड देना तथा चाणक्य के द्वारा अभिचार से मारे जाने की जगह महानन्द का विचक्षणा के दिए हुए विष से मारा जाना इत्यादि।

ढुढि लिखते है कि—"कलि के आदि मे नन्द नाम का एक राज-वश था। उसमे सर्वार्थसिद्धि मुख्य था। उसकी दो रानियॉ थी—एक सुनन्दा, दूसरी वृषला मुरा। सुनन्दा को एक मासपिण्ड और मुरा को मौर्य्य उत्पन्न हुआ। मौर्य्य से सौ पुत्र उत्पन्न हुए। मत्री राक्षस ने उस मासपिण्ड को जल में नौ टुकडे कर के रक्खा, जिससे नौ पुत्र हुए। सर्वार्थसिद्धि अपने उन नौ लडको को राज्य देकर तपस्या करने चला गया। उन नौ नन्दो ने मौर्य्य और उसके लडको को मार डाला केवल एक चन्द्रगुप्त प्राण बचाकर भागा, जो चाणक्य की सहायता से नन्दो का नाश कर के, मगध का राजा बना।"

कथा-सरित्सागर के कथापीठ लम्बक मे चन्द्रगुप्त के विषय मे एक विचित्र कथा है। उसमे लिखा है कि—"नन्द के मर जाने पर इन्द्रदत्त (जो कि उसके पास गुरु-दक्षिणा के लिए द्रव्य मॉगने गया था)—ने अपनी आतमा को योग-बल से राजा के शरीर मे डाला, और आप राज्य करने लगा। जब उसने अपने साथी वररुचि को एक करोड रुपया देने के लिए कहा, तब मत्री शकटार ने, जिसको राजा के मर कर

फिर से जी उठने पर पहिले ही से शका थी, विरोध किया। तब उस योगनन्द राजा ने चिढकर उसको कैद कर लिया और वररुचि को अपना मंत्री बनाया। योगनन्द बहुत विलासी हुआ, उसने सब राज्य-भार मत्री पर छोड दिया। उसकी ऐसी दशा देखकर वररुचि ने शकटार को छुडाया और दोनो मिलकर राज्य-कार्य्य करने लगे। एक दिन योगनन्द की रानी के चित्र मे उसकी जाँघ पर एक तिल बना देने से राजा ने वररुचि पर शका कर के शकटार को उसके मार डालने की आज्ञा दी। पर शकटार ने अपने उपकारी को छिपा रक्खा।

योगनन्द के पुत्र हिरण्यगुप्त ने जगल मे अपने मित्र रीछ से विश्वासघात किया। इससे वह पागल और गूगा हो गया। राजा ने कहा—"यदि वररुचि होता, तो इसका कुछ उपाय करता।" अनुकूल समय देखकर शकटार ने वररुचि को प्रकट किया। वररुचि ने हिरण्यगुप्त का सब रहस्य सुनाया और उसे नीरोग किया। इसपर योगनन्द ने पूछा कि तुम्हे यह बात कैसे ज्ञात हुई ? वररुचि ने उत्तर दिया—"योगबल से; जैसे रानी की जाँघ का तिल।" राजा उसपर बहुत प्रसन्न हुआ, पर वह फिर न ठहरा और जगल मे चला गया। शकटार ने समय ठीक देखकर चाणक्य-द्वारा योगनन्द को मरवा डाला और चन्द्रगुप्त को राज्य दिलाया।"

ढुढि ने भी नाटक मे वृषल और मौर्य्य शब्द का प्रयोग देखकर चन्द्रगुप्त को मुरा का पुत्र लिखा है, पर पुराणो मे कही भी चन्द्रगुप्त को वृषल या शूद्र नही लिखा है। पुराणो मे जो शूद्र शब्द का प्रयोग हुआ है वह शूद्रजात महापद्म के वश के लिए है, यह नीचे लिखे हुए विष्णु-पुराण के उद्धृत अंश पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जायगा—

ततोमहानन्दी १८ इत्येक शैशुनाका भूपालास्त्रिवर्षशतानि द्विषष्ठ्यधिकानि भविष्यन्ति १९ महानन्दिनस्तत. शूद्रागर्भोद्भवोति-लुब्धोऽतिबली महापद्मनामनन्द परशुराम इवापरोऽखिलक्षत्रियनाशकारी भविष्यति २० तत. प्रभृति शूद्रा भूपाला भविष्यन्ति २१ स

एकच्छत्रामनुल्लघित शासनो महापद्म. पृथ्वी भोक्ष्यते २२ तस्याप्यष्टौ सुता. सुमाल्यादय भवितार. २३ तस्य महापद्मस्थानु पृथिवी भोक्ष्यन्ति २४ महापद्मपुत्राश्चैकैक: वर्षशतमवनीपतयोभवष्यन्ति २५ ततश्च नव चैतान्नन्दान् कौटिल्यो ब्राह्मण समुद्धरिष्यति २६ तेषामभावे मौर्य्य पृथिवी भोक्ष्यन्ति २७ कौटिल्य एव चन्द्रगुप्तमुपन्न राज्येऽभिषेक्ष्यति २८

इससे यह मालूम होता है कि महानन्द के पुत्र महापद्म ने---जो शूद्राजात था---अपने पिता के बाद राज्य किया और उसके बाद सुमाल्य आदि आठ लडको ने राज्य किया और इन सब ने मिलकर महानन्द के बाद १०० वर्ष राज्य किया। इनके बाद चन्द्रगुप्त को राज्य मिला।

अब यह देखना चाहिए कि चन्द्रगुप्त को जो लोग महानन्द का पुत्र बताते है, उन्हे कितना भ्रम है, क्योकि उन लोगो ने लिखा है कि---"महानन्द को मार कर चन्द्रगुप्त ने राज्य किया।" पर ऊपर लिखी हुई वशावली से यह प्रकट हो जाता है कि महानन्द के बाद १०० वर्ष तक महापद्म और उसके लडको ने राज्य किया। तब चन्द्रगुप्त की कितनी आयु मानी जाय कि महानन्द के बाद महापद्मादि के १०० वर्ष राज्य कर लेने पर भी उसने २४ वर्ष शासन किया?

यह एक विलक्षण बात होगी यदि "नन्दान्त क्षत्रियकुलम्" के अनुसार शूद्राजात महापद्म और उसके लडके तो क्षत्रिय मान लिए जायँ और---"अत पर शूद्रा पृथिवी भोक्ष्यन्ति" के अनुसार शूद्रता चन्द्रगुप्त से आरम्भ की जाय। महानन्द को जब शूद्रा से एक ही लडका महापद्म था, तब दूसरा चन्द्रगुप्त कहाँ से आया? पुराणो मे चन्द्रगुप्त को कही भी महानन्द का पुत्र नही लिखा है। यदि सचमुच अन्तिम नन्द ही का नाम ग्रीको ने Zandrames रक्खा था, तो अवश्य ही हम कहेगे कि विष्णु-पुराण की महापद्म वाली कथा ठीक ग्रीको से मिल जाती है।

यह अनुमान होता है कि महापद्मवाली कथा, पीछे से बौद्धद्वेषी लोगो के द्वारा चन्द्रगुप्त की कथा मे जोडी गई है, क्योकि उसी का पौत्र अशोक बुद्ध-धर्म का प्रधान प्रचारक था।

ढुण्ढि के उपोद्घात से एक बात का और पता लगता है कि चन्द्रगुप्त महानन्द का पुत्र नही, किन्तु मौर्य्य सेनापति का पुत्र था। महापद्मादि शूद्रागर्भोद्भव होने पर भी नन्दवंशी कहाये, तब चन्द्रगुप्त मुरा के गर्भ मे उत्पन्न होने के कारण नन्दवंशी होने से क्यो वंचित किया जाता है ? इसलिए मानना पडेगा कि नन्दवंश और मौर्य्यवंश भिन्न है। मौर्य्यवंश अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है, जिसका उल्लेख पुराण, बृहत्कथा कामन्दकी इत्यादि मे मिलता है और पिछले काल के चित्तौर आदि के शिलालेखो मे भी इसका उल्लेख है। इसी मौर्य्यवंश मे चन्द्रगुप्त उत्पन्न हुआ।

चन्द्रगुप्त का बाल्य-जीवन

अर्थकथा, स्थविरावली, कथासरित्सागर और ढुण्ढि के आधार पर चन्द्रगुप्त के जीवन की प्राथमिक घटनाओ का पता चलता है।

मगध की राजधानी पाटलीपुत्र, शोण और गंगा के संगम पर थी। राजमन्दिर, दुर्ग, लम्बी-चौडी पण्य-वीथिका, प्रशस्त राजमार्ग इत्यादि राजधानी मे किसी उपयोगी वस्तु का अभाव न था। खाँई, सेना, रणतरी इत्यादि मे वह सुरक्षित भी थी। उस समय महापद्म का वहाँ राज्य था।

पुराण मे वर्णित अखिल क्षत्रिय-निधनकारी महापद्म नन्द या काल अशोक के लडको मे सब से बडा पुत्र एक नीच स्त्री से उत्पन्न हुआ था जो मगध छोडकर किसी अन्य प्रदेश मे रहता था। उस समय किसी डाकू से उससे भेंट हो गई और वह अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए उन्ही डाकुओ के दल मे मिल गया। जब उनका सरदार एक चढाई मे मारा गया, तो वही राजकुमार उन सबो का नेता बन गया और उसने पाटलीपुत्र पर चढाई की। उग्रसेन के नाम से उसने थोडे दिनो के लिए पाटलीपुत्र का अधिकार छीन लिया, इसके बाद उसके आठ भाइयो ने कई वर्ष तक राज्य किया।

नवे नन्द का नाम धननन्द था। उसने गंगा के घाट बनवाये और उसके प्रवाह को कुछ दिन के लिए हटाकर उसी जगह अपना भारी खजाना

गाड़ दिया। उसे लोग धननन्द कहने लगे। धननन्द के अन्नक्षेत्र में एक दिन तक्षशिला-निवासी चाणक्य ब्राह्मण आया और सब से उच्च आसन पर बैठ गया, जिसे देखकर धननन्द चिढ़ गया और उसे अपमानित करके निकाल दिया। चाणक्य ने धननन्द का नाश करने की प्रतिज्ञा की।

कहते है कि जब नन्द बहुत विलासी हुआ, तो उसकी क्रूरता और भी बढ़ गई—प्राचीन मन्त्री शकटार को बन्दी करके उसने वररुचि नामक ब्राह्मण को अपना मन्त्री बनाया। मगध-निवासी उपवर्ष के दो शिष्य थे, जिनमे से पाणिनि तक्षशिला मे विद्याभ्यास करने गया था, किन्तु वररुचि, जिसकी राक्षस से मैत्री थी, नन्द का मन्त्री बना। शकटार जब बन्दी हुआ तब वररुचि ने उसे छुडाया, और एक दिन वही दशा मन्त्री वररुचि की भी हुई। इनका नाम कात्यायन भी था। बौद्ध लोग इन्हे 'मगधदेशीय ब्रह्मबन्धु' लिखते है और पाणिनि के सूत्रो के यही वार्तिककार कात्यायन है। (कितने लोगो का मत है कि कात्यायन और वररुचि भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे।)

शकटार ने अपने बैर का समय पाया, और वह विष-प्रयोग द्वारा तथा एक-दूसरे को लडाकर नन्दो मे आतरिक द्वेष फैलाकर एक के बाद दूसरे को राजा बनाने लगा। धीरे-धीरे नन्दवश का नाश हुआ, और केवल अन्तिम नन्द बचा। उसने सावधानी से अपना राज्य सँभाला और वररुचि को फिर मन्त्री बनाया। शकटार ने प्रसिद्ध चाणक्य को, जो कि नीति-शास्त्र विशारद होकर गार्हस्थ्य जीवन मे प्रवेश करने के लिए राजधानी मे आया था, नन्द का विरोधी बना दिया। वह क्रुद्ध ब्राह्मण अपनी प्रतिहिसा पूरी करने के लिए सहायक ढूँढने लगा।

पाटलीपुत्र के नगर-प्रान्त मे पिप्पली-कानन के मौर्य्य-सेनापति का एक विभवहीन गृह था। महापद्म नन्द के और उनके पुत्रो के अत्याचार से मगध कॉप रहा था। मौर्य्य-सेनापति के बन्दी हो जाने के कारण उनके कुटुम्ब का जीवन किसी प्रकार कष्ट से बीत रहा था।

एक बालक उसी घर के सामने खेल रहा था। कई लडके उसकी

प्रजा बने थे। और वह था उनका राजा। उन्ही लडको मे से वह किसी को घोडा और किसी को हाथी बनाकर चढता और दण्ड तथा पुरस्कार आदि देने का राजकीय अभिनय कर रहा था। उसी ओर से चाणक्य जा रहे थे। उन्होंने उस बालक की राजक्रीडा बड़े ध्यान से देखी। उनके मन में कुतूहल हुआ और कुछ विनोद भी। उन्होंने ठीक-ठीक ब्राह्मण की तरह उस बालक राजा के पास जाकर याचना की—"राजन्, मुझे दूध पीने के लिए गऊ चाहिए।" बालक ने राजोचित उदारता का अभिनय करते हुए सामने चरती हुई गौओं को दिखलाकर कहा—"इनमे से जितनी इच्छा हो, तुम ले लो।"

ब्राह्मण ने हँसकर कहा—राजन्, ये जिसकी गाये है, वह मारने लगे तो?

बालक ने सगर्व छाती फुलाकर कहा—किसका साहस है जो मेरे शासन को न माने? जब मैं राजा हूँ, तब मेरी आज्ञा अवश्य मानी जायगी।

ब्राह्मण ने आश्चर्यपूर्वक बालक से पूछा—राजन्, आपका शुभ नाम क्या है?

तब तक बालक की माँ वहाँ आ गई, और ब्राह्मण से हाथ जोड़कर बोली—महाराज, यह बड़ा धृष्ट लडका है, इसके किसी अपराध पर ध्यान न दीजिएगा।

चाणक्य ने कहा—कोई चिन्ता नही, यह बडा होनहार बालक है। इसकी मानसिक उन्नति के लिए तुम इसे किसी प्रकार राजकुल मे भेजा करो।

उसकी माँ रोने लगी। बोली—हम लोगो पर राजकोप है, और हमारे पति राजा की आज्ञा से बन्दी किए गए है।

ब्राह्मण ने कहा—बालक का कुछ अनिष्ट न होगा, तुम इसे अवश्य राजकुल में ले जाओ।

इतना कह, बालक को आशीर्वाद देकर चाणक्य चले गये।

बालक की माँ बहुत डरते-डरते एक दिन, अपने चचल और साहसी लडके को लेकर राजसभा मे पहुँची।

नन्द एक निष्ठुर, मूर्ख और त्रासजनक राजा था। उसकी राजसभा बडे-बडे चापलूस मूर्खों से भरी रहती थी।

पहले के राजा लोग एक-दूसरे के बल, बुद्धि और वैभव की परीक्षा लिया करते थे और इसके लिए वे तरह-तरह के उपाय रचते थे। जव वालक माँ के साथ राजसभा मे पहुँचा, उसी समय किसी राजा के यहाँ से नन्द की राजसभा की बुद्धि का अनुमान करने के लिए, लोहे के वन्द पिंजडे मे मोम का सिह बनाकर भेजा गया था और उसके साथ यह कहलाया गया था कि पिजडे को खोले बिना ही सिंह को निकाल लीजिए।

सारी राजसभा इसपर विचार करने लगी, पर उन चाटुकार मूर्ख सभासदो को कोई उपाय न सूझा। अपनी माता के साथ वह वालक यह लीला देख रहा था। वह भला कव मानने वाला? उसने कहा—"मै निकाल दूँगा।"

सब लोग हँस पडे। वालक की ढिठाई भी कम न थी। राजा को भी आश्चर्य हुआ।

नन्द ने कहा—यह कौन है?

मालूम हुआ कि राजवन्दी मौर्य्य-सेनापति का यह लडका है। फिर क्या, नन्द की मूर्खता की अग्नि मे एक और आहुति पडी। क्रोधित होकर वह बोला—यदि तू इसे न निकाल सकेगा, तो तू भी इस पिंजडे मे वन्द कर दिया जायगा।

उसकी माता ने देखा कि यह भी कहाँ से विपत्ति आई, परन्तु वालक निर्भीकता से आगे वढा और पिजडे के पास जाकर उसको भलीभाँति देखा। फिर लोहे की शलाकाओ को गरम करके उस सिंह को गलाकर पिजडे को खाली कर दिया। *

---

* "मधूच्छिष्टमय धातु जीवन्तमिव पञ्जरे। सिहमादाय नन्देभ्य प्राहिणोत्सिहलाधिप। यो द्रावयेदिम क्रूर द्वारमनुद्घाटय पजर। सर्वोऽस्ति कश्चित्सुमतिरित्येव सदिदेशच। चन्द्रगुप्तस्तु मेधावी तप्तायसशलाकया। व्यलापयत्पञ्जरस्थ व्यस्मयन्त ततोऽखिला।"

सब लोग चकित रह गये ।

राजा ने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है ?

बालक ने कहा—चन्द्रगुप्त ।

ऊपर के विवरण से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त किशोरावस्था मे नन्दों की सभा मे रहता था । वहाँ उसने अपनी विलक्षण बुद्धि का परिचय दिया ।

पिप्पली-कानन के मौर्य्य लोग नन्दो के क्षत्रिय-नाशकारी शासन से पीडित थे, प्राय सब दबाए जा चुके थे । उस समय ये क्षत्रिय राजकुल नन्दो की प्रधान शक्ति से आक्रान्त थे । मौर्य्य भी नन्दो की विशाल वाहिनी मे सेनापति का काम करते थे । सम्भवत वे किसी कारण से राजकोप मे पडे थे और उनका पुत्र चन्द्रगुप्त नन्दों की राजसभा मे अपना समय बिताता था । उसके हृदय मे नन्दो के प्रति घृणा का होना स्वाभाविक था । जस्टिनस ने लिखा है—

When by his insolent behaviour he has offended Nandas, and was ordered by king to be put to death he sought safety by a speedy flight (Justinus X V)

चन्द्रगुप्त ने किसी वाद-विवाद वा अनबन के कारण नन्द को क्रुद्ध कर दिया और इस बात मे बौद्ध लोगो का विवरण, ढुण्ढि का उपोद्घात, तथा ग्रीक इतिहास लेखक सभी सहमत है कि उसे राज-क्रोध के कारण पाटलीपुत्र छोडना पडा ।

शकटार और वररुचि के सम्बन्ध की कथाएँ, जो कथा-सरित्सागर मे मिलती है, इस बात का सकेत करती है कि महापद्म के पुत्र बडे उच्छृङ्खल और क्रूर शासक थे । गुप्त षड्यन्त्रो से मगध पीडित था । राजकुल मे भी नित्य नया उपद्रव, विरोध और द्वन्द्व चला करते थे, उन्हीं कारणो से चन्द्रगुप्त की भी कोई स्वतत्र परिस्थिति उसे भावी नियति की ओर अग्रसर कर रही थी । चाणक्य की प्रेरणा से चन्द्रगुप्त ने सीमाप्रान्त की ओर प्रस्थान किया ।

महावंश के अनुसार बुद्ध-निर्वाण के १४० वर्ष बाद अन्तिम नन्द

को राज्य मिला, जिसने २२ वर्ष राज्य किया। इसके वाद चन्द्रगुप्त को राज्य मिला। यदि बुद्ध का निर्वाण ५४३ ई० पूर्व मे मान लिया जाय, तो उसमे से नन्दराज्य तक का समय १६२ घटा देने से ३८१ ई० पूर्व मे चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण की तिथि मानी जायगी। पर यह सर्वथा भ्रमात्मक है, क्योकि ग्रीक इतिहास-लेखको ने लिखा है कि "तक्षशिला मे जब ३२६ ई० पूर्व मे सिकन्दर से चन्द्रगुप्त ने भेट किया था, तब वह युवक राजकुमार था। अस्तु, यदि हम उसकी अवस्था उस समय २० वर्ष के लगभग मान ले, जो कि असगत न होगी, तो उसका जन्म-समय ३४६ ई० पूर्व के लगभग हुआ होगा। मगध के राजविद्रोह-काल मे वह १९ या २० वर्ष का रहा होगा।"

मगध से चन्द्रगुप्त के निकलने की तिथि ई० पूर्व ३२७ वा ३२८ निर्धारित की जा सकती है, क्योकि ३२६ मे तो वह सिकन्दर से तक्ष-शिला मे मिला ही था। उसके प्रवास की कथा वडी रोचक है। सिकन्दर जिस समय भारतवर्ष मे पदार्पण कर रहा था और भारतीय जनता के सर्वनाश का उपक्रम तक्षशिलाधीश्वर ने करना विचार लिया था—वह समय भारत के इतिहास मे स्मरणीय है, तक्षशिला नगरी अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी। जहाँ का विश्वविद्यालय पाणिनि और जीवक ऐसे छात्रो का शिक्षक हो चुका था—वही तक्षशिला अपनी स्वतन्त्रता पद-दलित कराने की आकाक्षा मे आकुल थी और उसका उपक्रम भी हो चुका था। कूटनीति-चतुर सिकन्दर ने, जैसा कि ग्रीक लोग कहते है, १,००० टेलेट (प्राय ३८,००,००० अडतीस लाख रुपया) देकर लोलुप देशद्रोही तक्षशिलाधीश को अपना मित्र बनाया। उसने प्रसन्न मन से अपनी कायरता का मार्ग खोल दिया और बिना बाधा सिकन्दर को भारत मे आने दिया। ग्रीक ग्रथकारो के द्वारा हम यह पता पाते है कि (ई० पूर्व ३२६ मे) उसी समय चन्द्रगुप्त शत्रुओ से बदला लेने के उद्योग मे अनेक प्रकार का कष्ट, मार्ग मे झेलते-झेलते भारत की अर्गला तक्षशिला नगरी मे पहुँचा था। तक्षशिला के राजा

ने भी महाराज पुरु से अपना वदला लेने के लिए सिकन्दर के लिए भारत का द्वार मुक्त कर दिया था। उन्ही ग्रीक ग्रथकारों के द्वारा यह पता चलता है कि चन्द्रगुप्त ने एक सप्ताह भी अपने को परमुखापेक्षी नही वना रक्खा और वह क्रुद्ध होकर वहाँ से चला आया। Justinus लिखता है कि उसने अपनी असहनशीलता के कारण सिकन्दर को असन्तुष्ट किया। वह सिकन्दर का पूरा विरोधी वन गया।

For having Offended Alexander by his impertinent language he was ordered to be put to death, and escaped only by flight. (JUSTINUS)

In history of A. S Literature.

सिकन्दर और चन्द्रगुप्त पंजाव में

सिकन्दर ने तक्षशिलाधीश की सहायता से जेहलम को पार करके पोरस के साथ युद्ध किया। उस युद्ध मे क्षत्रिय महाराज (पर्वतेश्वर) पुरु किस तरह लड़े और वह कैसा भयकर युद्ध हुआ, यह केवल इससे ज्ञात होता है कि स्वय जगद्विजयी सिकन्दर को कहना पडा—"आज हमको अपनी वरावरी का भीमपराक्रम शत्रु मिला और यूनानियो को तुल्य-वल से आज ही युद्ध करना पड़ा।" इतना ही नही, सिकन्दर का प्रसिद्ध अश्व 'वूका फेलस' इसी युद्ध मे हत हुआ और सिकन्दर भी स्वय आहत हुआ।

यह अनिश्चित है कि सिकन्दर को मगध पर आक्रमण करने को उत्तेजित करने के लिए ही चन्द्रगुप्त उसके पास गया था, अथवा ग्रीक-युद्ध की शिक्षा-पद्धति सीखने के लिए वहाँ गया था। उसने सिकन्दर से तक्षशिला मे अवश्य भेट की। यद्यपि उसका कोई कार्य वहाँ नही हुआ, पर उसे ग्रीकवाहिनी-रणचर्य्या अवश्य ज्ञात हुई, जिससे कि उसने पार्वतीय सेना से मगध राज्य का ध्वस किया।

क्रमश विनस्ता चन्द्रभागा, इरावती के प्रदेशो को विजय करना

हुआ सिकन्दर विपाशा-तट तक आया और फिर मगध-राज्य का प्रचण्ड प्रताप सुनकर उसने दिग्विजय की इच्छा को त्याग दिया और ३२५ ई० पू० मे फिलिप नामक पुरुष को क्षत्रप बनाकर आप काबुल की ओर गया। दो वर्ष के वीच मे चन्द्रगुप्त भी उसी प्रान्त मे घूमता रहा और जब वह सिकन्दर का विरोधी बन गया था, तो उसी ने पार्वत्य जातियो को सिकन्दर से लडने के लिए उत्तेजित किया और जिनके कारण सिकन्दर को इरावती से पाटल तक पहुँचने मे दस मास समय लग गया और इस बीच मे इन आक्रमणकारियों से सिकन्दर की बहुत क्षति हुई। इस मार्ग मे सिकन्दर को मालव-जाति से युद्ध करने मे वडी हानि उठानी पडी। एक दुर्ग के युद्ध मे तो उसे ऐसा अस्त्राघात मिला कि वह महीनो तक कडी बीमारी झेलता रहा। जल-मार्ग से जानेवाले सिपाहियो को निश्चय हो गया था कि 'सिकन्दर मर गया'। किसी-किसी का मत है कि सिकन्दर की मृत्यु का कारण यही घाव था।

सिकन्दर भारतवर्ष लूटने आया, पर जाते समय उसकी यह अवस्था हुई कि अर्थाभाव से अपने सेक्रेटरी यू डोमिनिस से उसने कुछ द्रव्य माँगा और न पाने पर इसका कैम्प फुँकवा दिया। सिकन्दर के भारतवर्ष मे रहने ही के समय मे चन्द्रगुप्त-द्वारा प्रचारित सिकन्दर-द्रोह पूर्णरूप से फैल गया था और इसी समय कुछ पार्वत्य राजा चन्द्रगुप्त के विशेष अनुगत हो गये थे। उनको रण-चतुर बनाकर चन्द्रगुप्त ने एक अच्छी शिक्षित सेना प्रस्तुत कर ली थी और जिसकी परीक्षा प्रथमत ग्रीक सैनिको ने ली। इसी गडवड मे फिलिप मारा गया* और उस प्रदेश के लोग पूर्णरूप से स्वतन्त्र बन गये। चन्द्रगुप्त को पार्वतीय सैनिको से बडी सहायता मिली और वे उसके मित्र बन गये। विदेशी शत्रुओ के साथ भारतवासियो का युद्ध देखकर चन्द्रगुप्त एक

*सिकन्दर के चले जाने पर इसी फिलिप ने षड्यन्त्र करके पोरस को मरवा डाला, जिससे विगड कर उसकी हत्या हुई।

रण-चतुर नेता वन गया। धीरे-धीरे उसने सीमावासी पार्वतीय लोगो को एक मे मिला लिया। चन्द्रगुप्त और पर्वतेश्वर विजय के हिस्सेदार हुए और सम्मिलित शक्ति से मगध-राज्य विजय करने के लिए चल पडे। अव यह देखना चाहिए कि चन्द्रगुप्त और चाणक्य की सहायक सेना मे कौन-कौन देश की सेनाएँ थी और वे कव पजाव से चले।

वहुत-से विद्वानो का मत है कि जो सेना चन्द्रगुप्त के साथ थी, वह ग्रीको की थी। यह वात विल्कुल असगत नही प्रतीत होती, जव 'फिलिप' तक्षशिला के समीप मारा गया, तो सम्भव है कि विना सरदार की मेना मे से किसी प्रकार पर्वतेश्वर ने कुछ ग्रीको की सेना को अपनी ओर मिला लिया हो जो कि केवल धन की लालच से ग्रीस छोड़कर भारतभूमि तक आये थे। उसी सम्मिलित आक्रमणकारी सेना मे कुछ ग्रीको का होना असम्भव नही है, क्योकि मुद्राराक्षस के टीकाकार ढुण्ढि लिखते है—

"नन्दराज्यार्धपणनात्समुत्थाप्य महावलम्।
पर्वतेन्द्रो म्लेच्छवल न्यरुन्धत्कुसुम पुरम् ॥"

तैलग महाशय लिखते है कि "The Yavanas referred in our play Mudrarakshasa were probably some of frontier tribes" कुछ तो उस सम्मिलित सेना के नीचे लिखे हुए नाम है, जिन्हे कि महाशय तैलग ने लिखा है।

मुद्राराक्षस—	तैलग—
शक	सीदियन
यवन (ग्रीक ?)	अफगान
किरात	सेवेज ट्राइव
पारसीक	परशियन
वाल्हीक	वैक्ट्रियन

इस सूची के देखने से ज्ञात होता है कि ये सव जातियाँ प्राय भारत की उत्तर-पश्चिम सीमा मे स्थित है। इस सेना में उपर्युक्त जातियाँ प्रायः

सम्मिलित रही हो तो असम्भव नही है। चन्द्रगुप्त ने असभ्य सेनाओ को ग्रीक प्रणाली से शिक्षित करके उन्हे अपने कार्य-योग्य बनाया। मेरा अनुमान है कि यह घटना ३२३ ई० पू० मे हुई, क्योकि वही समय सिकन्दर के मरने का है। उसी समय यूडेमिस नामक ग्रीक कर्म्मचारी और तक्षशिलाधीश के कुचक्र से फिलिप के द्वारा पुरु (पर्वतेश्वर) की हत्या हुई थी। अस्तु, पजाव प्रान्त एक प्रकार से अराजक हो गया और ३२२ ई० पू० मे इन सबो को स्वतन्त्र वनाते हुए ३२१ ई० पू० से मगध-राजधानी पाटलीपुत्र को चन्द्रगुप्त ने जा घेरा।*

मगध में चन्द्रगुप्त

अपमानित चन्द्रगुप्त वदला लेने के लिए खडा था, मगध-राज्य की दशा वडी शोचनीय थी। नन्द आन्तरिक विग्रह के कारण जर्जरित हो गया था, चाणक्य-चालित म्लेच्छ-सेना कुसुमपुर को चारो ओर से घेरे थी। चन्द्रगुप्त अपनी शिक्षित सेना को बराबर उत्साहित करता हुआ सुचतुर रण-सेनापति का कार्य करने लगा।

पन्द्रह दिन तक कुसुमपुर को बरावर घेरे रहने के कारण और वार-वार खण्ड-युद्ध मे विजयी होने के कारण चन्द्रगुप्त एक प्रकार से मगध-विजयी हो गया। नन्द ने, जो कि पूर्वकृत पापो से भीत और आतुर हो गया था, नगर से निकल कर चले जाने की आज्ञा मॉगी। चन्द्रगुप्त इस वात से सहमत हो गया कि धननन्द अपने साथ जो

---

*Justinus says :

Sandrocottus gave liberty to India after Alexander's retreat but soon converted the name of liberty into servitude after his success, subjecting those whom he had rescued from foreign domination to his own authority

H of A. S Lit

कुछ ले जा सके ले जाय, पर चाणक्य की एक चाल यह भी थी, क्योंकि उसे मगध की प्रजा पर शासन करना था। इसलिए यदि धननन्द मारा जाता तो प्रजाओ के और विद्रोह करने की सम्भावना थी। इसमे स्थविरावली तथा ढुण्ढि के विवरण से मतभेद है, क्योंकि स्थविरावलीकार लिखते है कि "चाणक्य ने धननन्द को चले जाने की आज्ञा दी, पर ढुण्ढि कहते है, चाणक्य के द्वारा शस्त्र से धननन्द निहत हुआ। मुद्राराक्षस से जाना जाता है कि यह विष-प्रयोग से मारा गया। पर यह वात पहले नन्दो के लिए सम्भव प्रतीत होती है।" चाणक्य की नीति की ओर दृष्टि डालने से यही ज्ञात होता है कि जान-बूझकर नन्द को अवसर दिया गया, और इसके वाद किसी गुप्त प्रकार से उनकी हत्या हुई।

कई लोगो का मत है कि पर्वतेश्वर की हत्या विना अपराध चाणक्य ने की। पर जहाँ तक सम्भव है, पर्वतेश्वर को कात्यायन के साथ मिला हुआ जानकर ही चाणक्य के द्वारा विषकन्या पर्वतेश्वर को मिली और यही मत भारतेन्दु जी का भी है। मुद्राराक्षस को देखने से यही ज्ञात भी होता है कि राक्षस पीछे पर्वतेश्वर के पुत्र मलयकेतु से मिल गया था। सम्भव है कि उसका पिता भी वररुचि की ओर पहले मिल गया हो और इसी वात को जान लेने पर चन्द्रगुप्त की हानि की सम्भावना देख कर किसी उपाय से पर्वतेश्वर की हत्या हुई हो।

तात्कालिक स्फुट विवरणो से ज्ञात होता है कि मगध की प्रजा और समीपवर्ती जातियाँ चन्द्रगुप्त के प्रतिपक्ष मे खडी हुई, उस लडाई में भी अपनी कूटनीति के द्वारा चाणक्य ने आपस में भेद करा दिया। प्रवल उत्साह के कारण, अविराम परिश्रम और अध्यवसाय से, अपने

---

* However mysterious the nine Nandas may be if indeed they really were nine, there is no doubt that the last of them was deposed and slain by Chandragupta. —V. A. Smith. E H. of India.

वाहुबल और चाणक्य के बुद्धिबल से, सामान्य भू-स्वामी चन्द्रगुप्त, मगध-साम्राज्य के सिंहासन पर बैठा ।

बौद्धो की पहली सभा कालाशोक या महापद्म के समय में हुई । बुद्ध के ९० वर्ष बाद यह गद्दी पर बैठा और इसके राज्य के दस वर्ष वाद सभा हुई, उसके वाद उसने १८ वर्ष राज्य किया । यह ११८ वर्ष का समय, बुद्ध के निर्वाण से कालाशोक के राजत्व-काल तक है । कालाशोक का पुत्र २२ वर्ष तक राज्य करता रहा, उसके वाद २२ वर्ष तक नन्द, उसके वाद चन्द्रगुप्त को राज्य मिला । (११८+२२+२२) बुद्ध-निर्वाण के १६२ वर्ष वाद चन्द्रगुप्त को राज्य मिला । बुद्ध का समय यदि ५४३ ई० पू० माना जाय, तव तो (५४३–१६२) = ३८१ ई० पू० मे ही चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण निर्धारित होता है । दूसरा मत मैक्समूलर आदि विद्वानो का है कि बुद्ध-निर्वाण ४७७ ई० पू० में हुआ । इस प्रकार उक्त राज्यारोहण का समय ३१५ ई० पू० निकलता है । इससे ग्रीक समय का मिलान करने से एक तो ४० वर्ष वढ जाता है, दूसरा ५ या ६ वर्ष घट जाता है ।

महावीर स्वामी के निर्वाण के १५५ वर्ष वाद, चन्द्रगुप्त जैनियो के मत से, राज्य पर बैठा, ऐसा मालूम होता है । आर्य-विद्या-सुधाकर के अनुसार ४७० विक्रम पू० मे महावीर स्वामी का वर्तमान होना पाया जाता है । इससे यदि ५२० ई० पू० मे महावीर स्वामी का निर्वाण मान लें, तो उसमें से ११५ घटा देने से ३६५ ई० पू० मे चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण का समय होता है जो सर्वथा असम्भव है । यह मत भी वहुत भ्रम-पूर्ण है ।

पडित रामचन्द्र जी शुक्ल ने मेगास्थनीज़ की भूमिका मे लिखा है कि ३१६ ई० पू० में चन्द्रगुप्त गद्दी पर बैठा और २९२ ई० पू० तक उसने २४ वर्ष राज्य किया ।

पडितजी ने जो पाश्चात्य लेखको के आधार पर चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण-समय लिखा है, वह भी भ्रम से रहित नही है, क्योकि स्ट्रावो के

मतानुसार २९६ मे Deimachos का मिशन विन्दुसार के समय मे आया था। यदि २९२ तक चन्द्रगुप्त का राज्य-काल मान लिया जाय, तो डिमाकस, चन्द्रगुप्त के राजत्व-काल ही मे आया था, ऐसा प्रतीत हो गया, क्योंकि शुक्लजी के मत मे ३१६ ई० पू० से २९२ ई० पू० तक चन्द्रगुप्त का राजत्व-काल है, डिमाकस के मिशन का समय २९६ ई० पू० जिसके अन्तर्गत हो जाता है। यदि हम चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण ३२१ ई० पू० मे माने, तो उसमे से उसका राजत्व-काल २४ वर्ष घटा देने से २९७ ई० पू० तक उसका राजत्वकाल और २९६ ई० पू० मे विन्दुसार का राज्यारोहण और डिमाकस के मिशन का समय ठीक हो जाता है। ऐतिहासिको का अनुमान है कि "२५ वर्ष की अवस्था मे चन्द्रगुप्त गद्दी पर बैठा" वह भी ठीक हो जाता है। क्योकि पूर्व-निर्धारित चन्द्रगुप्त के जन्म-समय ३४६ ई० पू० में २५ वर्ष घटा देने से भी ३२१ ई० पू० ही बचता है, जिससे यह सिद्ध होता है कि चन्द्रगुप्त पाटलीपुत्र मे मगध-राज्य के सिंहासन पर ३२१ ई० पू० मे आसीन हुआ।

विजय

उस समय गंगा के तट पर दो विस्तृत राज्य थे, जैसा कि मेगास्थनीज़ लिखता है, एक प्राच्य (Prassi) और दूसरा गंगरिडीज (Gangarideas)। प्राच्य राज्य मे अवन्ती, कोशल, मगध, वाराणसी, विहार आदि देश थे और दूसरा गंगरिडीज गंगा के उस भाग के तट पर था, जो कि समुद्र के समीप मे था। वह बंगाल था। गंगरिडीज और गौड एक ही देश का नाम प्रतीत होता है। गौड राज्य का राजा, नन्द के अधीन था। अवन्ती मे भी एक मध्य प्रदेश की राजधानी थी, वह भी नन्दाधीन थी। बौद्धो के विवरण से ज्ञात होता है कि ताम्रलिप्ति*, जिसे अब तामलूक कहते है मिदनापुर जिले मे

---

*अस्तीह नगरी लोके ताम्रलिप्तीति विश्रुता। तत्र स तत्पिता

उस समय समुद्र-तट पर अवस्थित गगरिडीज के प्रसिद्ध नगरो मे था ।

प्राच्य देश की राजधानी पालीबोथा थी, जिसे पाटलीपुत्र कहना असगत न होगा । मेगास्थनीज लिखता है, कि गगरिडीज की राजधानी पर्थिलीस थी । डाक्टर श्यानवक का मत है कि सम्भवत यह वर्धमान ही था, जिसे ग्रीक लोग पर्थलिस कहते थे । इसमे विवाद करने का अवसर नही है, क्योकि वर्धमान गौड देश के प्राचीन नगरो मे है और यह राजधानी के योग्य भूमि पर बसा हुआ है ।

केवल नन्द को ही पराजित करने से, चन्द्रगुप्त को एक बडा विस्तृत राज्य मिला, जो आसाम से लेकर भारत के मध्यप्रदेश तक व्याप्त था ।

अशोक के जीवनीकार लिखते है, कि अशोक का राज्य चार प्रादेशिक शासको से शासित होता था । तक्षशिला, पजाब और अफ़गानिस्तान की राजधानी थी , टोसाली कलिंग की, अवन्ती मध्यप्रदेश की और स्वर्णगिरि—भारतवर्ष के दक्षिण भाग की राजधानी थी ।* अशोक की जीवनी से ज्ञात होता है कि उसने केवल कलिंग ही विजय किया था । बिन्दुसार के विजयो की गाथा कही भी नही मिलती । मि० स्मिथ ने लिखा है कि It is more probable that the conquest of the south was the work of Bindusar, परन्तु इसका कोई प्रमाण नही है ।

प्रायद्वीप खण्ड को जीतकर चन्द्रगुप्त ने स्वर्णगिरि मे उसका शासक रक्खा और सम्भवत यह घटना उस समय की है, जब विजेता सिल्यूकस एक विशाल साम्राज्य की नीव सीरिया-प्रदेश मे डाल रहा था । वह घटना ३१६ ई० पू० मे हुई ।

तेन तनयेन सम ययौ । द्वीपान्तर स्नुषाहेतो र्वाणिज्यव्यपदेशत ६८ ।

(कथापीठ लम्बक ५ तरग)

इससे ज्ञात होता है, कि ताम्रलिप्ति समुद्र-तट पर अवस्थित थी, जहाँ से द्वीपान्तर जाने मे लोगो को सुविधा होती थी ।

*Vincent A. Smith Life of Ashoka.

इस समय चन्द्रगुप्त का शासन भारतवर्ष मे प्रधान था और छोटे-छोटे राज्य यद्यपि स्वतन्त्र थे ; पर वे भी चन्द्रगुप्त के शासन मे सदा भयभीत होकर मित्र-भाव का वर्ताव रखते थे। उसका राज्य पाडुचेर और कनानूर से हिमालय की तराई तक तथा सतलज से आसाम तक था। केवल कुछ राज्य दक्षिण मे, जैसे—केरल इत्यादि और पजाव मे वे प्रदेश, जिन्हे सिकन्दर ने विजय किया था, स्वतन्त्र थे, किन्तु चन्द्रगुप्त पर ईश्वर की अपार कृपा थी, जिसने उसे ऐसा सुयोग दिया कि वह भी ग्रीस इत्यादि विदेशो मे अपना आतक फैलावे।

सिकन्दर के मर जाने के वाद ग्रीक जनरलो मे वड़ी स्वतन्त्रता फैली। ई० पू० ३२३ मे सिकन्दर मरा। उसके प्रतिनिधि-स्वरूप पर्दिकस शासन करने लगा ; किन्तु इससे भी असन्तोष हुआ, सव जनरलो और प्रधान कर्मचारियो ने मिलकर एक सभा की। ई० पू० ३२१ मे सभा हुई और सिल्यूकस वैवीलोन की गद्दी पर वैठाया गया। टालमी आदि मिश्र के राजा समझे जाने लगे, पर आटिगोनस, जो कि पूर्वीय एशिया का क्षत्रप था, अपने वल को वढाने लगा और इसी कारण सव जनरल उसके विरुद्ध हो गये, यहाँ तक कि ग्रीक-साम्राज्य से अलग होकर सिल्यूकस ने ३१२ ई० पूर्व मे अपना स्वाधीन राज्य स्थापित किया। वहुत-सी लडाइयो के वाद सन्धि हुई और सीरिया इत्यादि प्रदेशो का आटिगोनस स्वतत्र राजा हुआ। थ्रेस के लिसिमकास, मिस्र के टालेमी और वैवीलोन के समीप के प्रदेश मे सिल्यूकस का आधिपत्य रहा। यह सन्धि ३१९ ई० पू० मे हुई। सिल्यूकस ने उधर के विग्रहो को कुछ शान्त कर के भारत की ओर देखा।

इसे भी वह ग्रीक साम्राज्य का एक अंग समझता था। आराकोसिया, वैक्ट्रिया, जेडोसिया आदि विजय करते हुए उसने ३०६ ई० पू० मे भारत पर आक्रमण किया। चन्द्रगुप्त उसी समय दिग्विजय करता हुआ पजाव की ओर आ रहा था और उसने जव सुना कि ग्रीक लोग फिर भारत पर चढाई कर रहे है, वह भी उन्ही की

ओर चल पड़ा। इस यात्रा मे ग्रीक लोग लिखते है कि उसके पास ६,००,००० सैनिक थे, जिनमे ३०,००० घोडे और ९,००० हाथी, बाकी पैदल थे।* इतिहासो से पता चलता है कि सिन्धुतट पर यह युद्ध हुआ।

सिल्यूकस सिन्धु के उस तीर पर आ गया, मौर्य्य-सम्राट् इस आक्रमण से अनभिज्ञ था। उसके प्रादेशिक शासक, जो कि उत्तर-पश्चिम प्रान्त के थे, बराबर सिल्यूकस का गतिरोध करने के लिए प्रस्तुत रहते थे, पर अनेक उद्योग करने पर भी कपिशा आदि दुर्ग सिल्यूकस के हस्तगत ही हो गये। चन्द्रगुप्त, जो कि सतलज के समीप से उसी ओर बराबर बढ रहा था, सिल्यूकस की क्षुद्र विजयो से घवडा कर बहुत शीघ्रता से तक्षशिला की ओर चल पडा। चन्द्रगुप्त के बहुत थोडे समय पहले ही सिल्यूकस सिन्धु के इस पार उतर आया और तक्षशिला के दुर्ग पर चढाई करने के उद्योग मे था। तक्षशिला की सूबेदारी बहुत बडी थी। उसे विजय कर लेना सहज कार्य न था। सिल्यूकस अपनी रक्षा के लिए मिट्टी की खाई बनवाने लगा।

चन्द्रगुप्त अपनी विजयिनी सेना लेकर तक्षशिला मे पहुँचा और मौर्य्य-पताका तक्षशिला-दुर्ग पर फहराकर महाराज चन्द्रगुप्त के आगमन की सूचना देने लगा। मौर्य्य-सेना ने आक्रमण करके ग्रीको की मिट्टी की परिखा और उनका व्यूह नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। मौर्य्यो का वह भयानक आक्रमण उन लोगो ने बडी वीरता से सहन किया, ग्रीको का कृत्रिम दुर्ग उनकी रक्षा कर रहा था, पर कब तक? चारो ओर से असख्य मौर्य्य-सेना उस दुर्ग को घेरे थी। आपातत उन्हे कृत्रिम दुर्ग छोडना पडा। इस बार भयानक लडाई आरम्भ हुई। मौर्य्य-सेना का चन्द्रगुप्त स्वय नायक था। असीम उत्साह से मौर्य्यो ने आक्रमण करके ग्रीक सेना को

---

*The same king (Chandragupta) traversed India with an army of 6,00,000 men and conquered the whole (Plutarch in H A S Lit)

छिन्न-भिन्न कर दिया। लौटने की राह मे बड़ी बाधा-स्वरूप सिन्धु नदी थी, इसलिए अपनी टूटी हुई सेना को एक जगह उन्हे एकत्र करना पडा। चन्द्रगुप्त की विजय हुई। इसी समय ग्रीक जनरलो मे फिर खलवली मची हुई थी। इस कारण सिल्यूकस को शीघ्र उस ओर लौटना था। किसी ऐतिहासिक का मत है कि इसी से सिल्यूकस शीघ्र ही सन्धि कर लेने पर वाध्य हुआ। इस सन्धि में ग्रीक लोगो को चन्द्रगुप्त और चाणक्य से सब ओर से दबना पडा।

इस सन्धि के समय मे कुछ मतभेद है। किसी का मत है कि यह सन्धि ३०५ ई० पू० मे हुई और कुछ लोग कहते है कि ३०३ ई० पू० मे। सिल्यूकस ने जो ग्रीक-सन्धि की थी, वह ३११ ई० पू० मे हुई, उसके बाद ही वह युद्ध-यात्रा के लिए चल पडा। अस्तु आरा-कोसिया, जेड्रोसिया और बैक्ट्रिया आदि विजय करते हुए भारत तक आने मे पॉच वर्ष से विशेष समय नही लग सकता और इसी से उस युद्ध का समय, जो कि चन्द्रगुप्त से उससे हुआ था, ३०६ ई० पू० माना गया। तब ३०५ ई० पू० सन्धि का होना ठीक-सा जँचता है। सन्धि मे चन्द्रगुप्त भारतीय प्रदेशो के स्वामी हुए। अफगानिस्तान और मकराना भी चन्द्रगुप्त को मिला और उसके साथ-ही-साथ कुल पन्जाब और सौराष्ट्र पर चन्द्रगुप्त का अधिकार हो गया। सिल्यूकस बहुत शीघ्र लौटने वाला था। ३०१ ई० पू० में होने वाले युद्ध के लिए उसे तैयार होना था, जिसमें कि Ipsus के मैदान मे उसने अपने चिरशत्रु आटिगोनस को मारा था। चन्द्रगुप्त को इस ग्रीक विप्लव ने बहुत सहायता दी और उसने इसी कारण मनमाने नियमो मे सन्धि करने के लिए सिल्यूकस को बाध्य किया।*

पाटल आदि बन्दर भी चन्द्रगुप्त के अधीन हुए तथा काबुल में

---

* हिरात, कधार, काबुल, मकराना, भी भारत मे और प्रदेशो के साथ सिल्यूकस ने चन्द्रगुप्त को दिया। V A. Smith E H of India.

† मेगास्थनीज़ हिरात के क्षत्रप साइबर्टियस के पास रहा करता था।

सिल्यूकस की ओर से एक राजदूत का रहना स्थिर हुआ। मेगास्थनीज ही प्रथम राजदूत नियत हुआ। यह तो सब हुआ, पर नीति-चतुर सिल्यूकस ने एक और बुद्धिमानी का कार्य यह किया कि चन्द्रगुप्त से अपनी सुन्दरी कन्या का पाणिग्रहण कर दिया, जिसे चन्द्रगुप्त ने स्वीकार कर लिया और दोनो राज्य एक सम्बन्ध-सूत्र मे बँध गये। जिसपर सन्तुष्ट होकर वीर चन्द्रगुप्त ने ५०० हाथियो की एक सेना सिल्यूकस को दी और अब चन्द्रगुप्त का राज्य भारतवर्ष मे सर्वत्र हो गया। रुद्रदामा के लेख से ज्ञात होता है कि पुष्पगुप्त[१] उस प्रदेश का शासक नियत किया गया था जो सौराष्ट्र और सिन्ध तथा राजपूताना तक था। अब चन्द्रगुप्त के अधीन दो प्रादेशिक शासक और हुए, एक तक्षशिला मे, दूसरा सौराष्ट्र मे। इस तरह से अध्यवसाय का अवतार चन्द्रगुप्त प्रबल पराक्रान्त राजा माना जाने लगा और ग्रीस, मिश्र, सीरिया इत्यादि के नरेश, उसकी मित्रता से अपना गौरव समझते थे।

उत्तर में हिन्दूकुश, दक्षिण मे पाडुचेरी और कनानूर, पूर्व मे आसाम और पश्चिम मे सौराष्ट्र, समुद्र तथा वाल्हीक तक, चन्द्रगुप्त के राज्य की सीमा निर्धारित की जा सकती है।

चन्द्रगुप्त का शासन

गगा और शोण के तट पर मौर्य्य-राजधानी पाटलीपुत्र वसा था। दुर्ग—पत्थर, ईंट तथा लकडी के वने हुए सुदृढ प्राचीर से परिवेष्ठित था। नगर ८० स्टेडिया लम्बा और ३० स्टेडिया चौडा था। दुर्ग में ६४ द्वार तथा ५७० बुर्ज थे। सौध-श्रेणी, राजमार्ग, सुविस्तृत पण्य-वीथिका से नगर पूर्ण था और व्यापारियो की दूकाने अच्छे प्रकार से सुशोभित और सज्जित रहती थी। भारतवर्ष की केन्द्र नगरी कुसुमपुरी

---

[१]पुष्पगुप्त ही ने उस पहाडी नदी का बाँध, महाराज चन्द्रगुप्त की आज्ञा से इसलिए बनाया कि खेती को बहुत लाभ होगा और उस बडी झील का नाम सुदर्शन रक्खा।

वास्तव मे कुसुम-पूर्ण रहती थी। सुसज्जित तुरगो पर धनाढ्य लोग प्राय राजमार्ग मे यातायात किया करते थे। गगा के कूल मे बने हुए सुन्दर राजमन्दिर मे चन्द्रगुप्त रहता था और केवल तीन कामो के लिए महल के बाहर आता—

पहिला, प्रजाओ का आवेदन सुनना, जिसके लिए प्रतिदिन एक बार चन्द्रगुप्त को विचारक का आसन ग्रहण करना पडता था। उस समय प्राय. तुरग पर, जो आभूषणो से सजा हुआ रहता था, चन्द्रगुप्त आरोहण करता और प्रतिदिन न्याय से प्रजा का शासन करता था।

दूसरा, धर्म्मानुष्ठान बलिप्रदान करने के लिए, जो पर्व और उत्सव के उपलक्षो पर होते थे। मुक्तागुच्छ-शोभित कारु-कार्य-खचित शिविका पर (जो कि सम्भवत खुली हुई होती थी) चन्द्रगुप्त आरोहण करता। इससे ज्ञात है होता कि चन्द्रगुप्त वैदिक धर्मावलम्बी* था, क्योकि

---

*मैसूर मे मुद्रित अर्थशास्त्र चाणक्य ही का बनाया है और वह चन्द्रगुप्त के ही लिए बनाया गया है, यह एक प्रकार से सिद्ध हो चुका। उसका उल्लेख प्राय दशकुमारचरित, कादम्बरी तथा कामन्दकीय आदि मे मिलता है। उसमे भी लिखा है कि "सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगमुपलभ्य च। कौटिल्येन नरेन्द्रार्थे शासनाय विधि कृत ॥" (७५ पृष्ठ, अर्थशास्त्र) यह नरेन्द्र शब्द चन्द्रगुप्त के ही लिए प्रयोग किया गया है, उसमे चन्द्रगुप्त के क्षत्रिय होने के तथा वेदधर्म्मावलम्बी होने के बहुत-से प्रमाण मिलते है।

(तृतीये स्नान भोजन च सेवेत, स्वाध्याय च कुर्वीत) ३७ पृ०

(प्रतिष्ठितेहनि सध्यामुपासीत) ६८ पृष्ठ, अर्थशास्त्र।

'स्वाध्याय' और 'सध्या' से ही ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त वेद-धर्म्मावलम्बी था और यहाँ पर वह मुरा शूद्रावाली कल्पना भी कट जाती है, क्योकि चाणक्य, जिसने लिखा है कि "शूद्रस्य द्विजातिशुश्रूषा"

बौद्ध और जैन ये ही धर्म उस समय वैदिक धर्म के प्रतिकूल प्रचलित थे। बलिप्रदानादिक कर्म वैदिक ही होता रहा होगा।

तीसरे, मृगया खेलने के समय कुजर पर सवारी निकलती। उस समय चन्द्रगुप्त स्त्री-गण से घिरा रहता था, जो धनुर्वाण आदि लिए उसके शरीर की रक्षा करती थी।

उस समय राजमार्ग डोरी से घेरा रहता था और कोई उसके भीतर नही जाने पाता था।

चन्द्रगुप्त राजसभा मे बैठता तो चार सेवक आवनूस के वेलन से उसका अग सवाहन करते थे। यद्यपि चन्द्रगुप्त प्रबल प्रतापी राजा था, पर वह षड्यन्त्रो से शकित होकर एक स्थान पर सदा नही रहता था, जिसका कि मुद्राराक्षस मे कुछ आभास मिलता है और यह मेगास्थनीज ने भी लिखा है।

हाथी, पहलवान, मेढा और गैडो की लडाई भी होती थी, जिसे राजा और प्रजा दोनो बडे चाव से देखते थे। वहुत से उत्सव भी नगर मे हुआ करते थे।

प्रहरी स्त्रियाँ, जो कि मोल ली जाती थी, राजा के शरीर की सदा

(अर्थशास्त्र) वही यदि चन्द्रगुप्त शूद्र होता तो उसके लिए 'स्वाध्याय' और 'सध्या' का उपदेश न देता।

अस्तु, जहाँ तक देखा जाता है, चन्द्रगुप्त वैदिक-धर्म्मावलम्वी ही था और यह भी प्रसिद्ध है कि अशोक ही ने वौद्धधर्म को State Religion वनाया।

अर्थशास्त्र मे वर्षा होने के लिए इन्द्र की विशेष पूजा का उल्लेख है तथा शिव, स्कद, कुवेर इत्यादि की पूजा प्रचलित थी, इनके देवालय नगर के मध्य मे रखना आवश्यक समझा जाता था।

अर्थशास्त्र २०६—५५ पृ०

R. C D Dutt का भी मत है कि चन्द्रगुप्त और उसका पुत्र विन्दुसार वौद्ध नही था।

रक्षा करती थी। वे रथो, घोडो और हाथियो पर राजा के साथ चलती थी, राज-दरवार वहुत आडम्वर से सजा रहता था, जो कि दर्शनीय रहता था। मेगास्थनीज इत्यादि ने इसका विवरण विस्तृत रूप से लिखा है।* पाटलीपुत्र नगरी मौर्य्य-राजधानी होने से वहुत उन्नत अवस्था में थी।

राजधानी मे नगर का शासन-प्रवन्ध भी छ विभागो मे विभक्त था और उनके द्वारा पूर्णरूप से नगर का प्रवन्ध होता था। मेगास्थनीज़ लिखता है कि प्रथम विभाग उन कर्मचारियो का था, जो विक्रेय वस्तुओ का मूल्य-निर्धारण और श्रमजीवियो का वेतन तथा शिल्पियो

---

* The district possesses special interest, both for Historian and Archeologist Patna City has been identified with Patliputra (See Plibothra of Megasthanes), which supposed to have been founded six hundred years before the Christian era by Raja Ajatshatru, a contemporary of Gautam, the founder of the Buddhist religion.
(Imp Gaz of India, Vol XI, p 24)

त्रिकाड शेष और हेमचन्द्र-अभिधान मे तथा मुद्राराक्षस मे पाटलीपुत्र के दो और नाम पाये जाते है, एक कुसुमपुर और दूसरा पुष्पपुर। चीनी यात्री भी इन नामो से परिचित था। The pilgrimage of Fa-Hien मे इसका विवरण है। हितोपदेश मे लिखा है कि—"अस्ति भागीरथीतीरे पाटलीपुत्र नाम नगरम्।" पर ग्रीक लोगो ने उसे गगा और हिरण्यवाह के तट पर होना लिखा है। इधर मुद्राराक्षस के "शोण सिन्दूरशोणा मम गजपतय पास्यन्ति शतश" से ज्ञात होता है कि वह शोण और गगा के सगम पर था। पाटलीपुत्र कव वसा, इसका ठीक पता नही चलता। कथा-सरित्सागर के मत से इसे पुत्रक नामक ब्राह्मण-कुमार और पाटली नाम्नी राजकुमारी ने अपने नामो से वसाया था, पर इसके लिए जो कथा है, वह विश्वास के योग्य नही है।

का शुल्क-निर्धारण तथा निरीक्षण करता था। किसी शिल्पी के अग-भग करने से वही विभाग उन लोगो को दण्ड देता था। सम्भवतं यह विभाग म्युनिस्पैलिटी के बराबर था, जो कि पॉच सदस्यो से कार्य्य-निर्वाह करता था।

द्वितीय विभाग विदेशियो के व्यवहार पर ध्यान रखता था। पीडित विदेशियो की सेवा करता था, उनके जाने के लिए वाहन आदि का आयोजन करना, उनके मरने पर उनकी सम्पत्ति की व्यवस्था करना और उन्हे जो हानि पहुँचावे, उनको कठोर दण्ड से दण्डित करना उनका कार्य्य था। इससे ज्ञात होता है कि व्यापार अथवा अन्य कार्यो के लिए वहुत-से विदेशी कुसुमपुर मे आया करते थे।

तृतीय विभाग प्रजाओ के मरण और जन्म की गणना करता था और उनपर कर निर्धारित करता था।

चतुर्थ विभाग व्यापार का निरीक्षण करता था और तुला तथा नाप का प्रवन्ध करता था।

पचम विभाग राजकीय कोष का था, जहॉ द्रव्य बनाये जाते और रक्षित रहते थे।

छठा विभाग राजकीय कर का था, जिसमे व्यापारियो के लाभ

बौद्ध लोग लिखते है कि राजा अजातशत्रु के मन्त्री वर्षकार ने पाटली ग्राम मे एक दुर्ग वनवाया था, जिसे देखकर महात्मा बुद्ध ने कहा था कि यह कुछ दिनो मे एक प्रधान नगर हो जायगा। इधर वायुपुराण में लिखा है कि अजातशत्रु के पुत्र उदयाश्व ने यह नगर बसाया है—

स वै पुरवर राजा पृथिव्या कुसुमाह्वय।
गगाया दक्षिणे कोणे चतुर्थाब्दे करिष्यति॥ वायुपुराण।

अजातशत्रु और वुद्ध समकालीन थे। वुद्ध का निर्वाण ५५० ई० पू० मे मान ले तो सम्भव है कि पाटली-दुर्ग पचास वर्ष के वाद नगर-रूप मे परिणत हो गया हो। अनुमान किया जाता है कि ५०० ई० पू० मे पाटलीपुत्र बसा था।

से दसमाश लिया जाता था और उन्हे खूब सावधानी से कार्य करना होता था। जो उस कर को न देता, वह कठोर दण्ड से दण्डित होता था।

राज्य के कर्मचारी लोग भूमि की नाप और उसपर कर-निर्धारण करते थे और जल की नहरो का समुचित प्रवन्ध करते थे, जिससे सव कृषको को सरलता होती थी। रुद्रदामा के गिर्नारवाले लेख से प्रतीत होता है कि सुदर्शन ह्रद महाराज चन्द्रगुप्त के राजत्व-काल मे वना था। इससे ज्ञात होता है कि राज्य मे सर्वत्र जल का प्रवन्ध रहता था तथा कृषको के लाभ पर विशेष ध्यान रहता था।

राज्य के प्रत्येक प्रान्त में समाचार सग्रह करने वाले थे, जो सत्य समाचार चन्द्रगुप्त को देते थे। चाणक्य-सा वुद्धिमान् मन्त्री चन्द्रगुप्त को वडे भाग्य से मिला था और उसकी विद्वत्ता ऊपर लिखित प्रवन्धो से ज्ञात होती है। युद्धादि के समय मे भी भूमि वरावर जोती जाती थी, उसके लिए कोई वाधा नही थी।

राजकीय सेना मे, जिसे राजा अपने व्यय से रखते थे, रणतरी २००० थी।* ८००० रथ, जो चार घोडो से जुते रहते थे, जिस पर एक रथी और दो योद्धा रहते थे। ४,००,००० पैदल असिचर्म्मधारी, धनुर्वाणधारी। ३०,००० अश्वारोही। ९०,००० रण-कुञ्जर, जिन पर महावत लेकर ४ योद्धा रहते थे और युद्ध के भारवाही, अश्व के सेवक तथा अन्यान्य सामग्री ढोनेवालो को मिलाकर ६,००,००० मनुष्यो की भीड-भाड उस सेना मे थी और उस सेना-विभाग के प्रत्येक ६ विभागो मे ५ सदस्य रहते थे।

प्रथम विभाग नौ-सेना का था। दूसरा विभाग युद्ध-सम्वन्धी भोजन, वस्त्र, छकडे, वाजा, सेवक और जानवरो के चारा का प्रवन्ध करता था।

---

* "नदीपर्वतदुर्गीयाभ्या नदीदुर्गीयात् भूमि लाभ श्रेयान् नदीदुर्गे हि हस्तिस्तम्भसक्रमसेतुवन्धूनौभिस्साध्यम्"—अर्थशास्त्र २९४

"नावध्यक्ष समुद्रसयाननदीमुखतर प्रचारान् देवमरोविसरोनदीतराश्च स्थानीयादिप्ववेक्षेत।"—अर्थशास्त्र, प्रकरण ४५

तीसरे वर्ग के अधीन पैदल सैनिक रहते थे । चौथा विभाग अश्वारोहियो का था । पाँचवाँ, युद्ध-रथ की देखभाल करता था । छठा, युद्ध के हाथियो का प्रबन्ध करता था ।

इस प्रकार सुरक्षित सेना और अत्युत्तम प्रबन्ध से चन्द्रगुप्त ने २४ वर्ष तक भारत-भूमि का शासन किया । भारतवर्ष के इतिहास मे मौर्य्य-युग का एक स्मरणीय समय छोडकर २९७ ई० पू० मे मानवलीला सवरण करके चन्द्रगुप्त ने अपने सुयोग्य पुत्र के हाथ मे राज्य-सिहासन दिया ।

सम्राट् चन्द्रगुप्त दृढ शासक, विनीत, व्यवहार -चतुर, मेधावी, उदार, नैतिक, सद्गुण-सम्पन्न तथा भारतभूमि के सपूतो मे से एक रत्न था । बौद्ध ग्रथ, अर्थकथा और वायुपुराण से चन्द्रगुप्त का शासन २४ वर्षों का ज्ञात होता है जो ३२१ ई० पू० से २९७ तक ठीक प्रतीत होता है ।

चन्द्रगुप्त के समय का भारतवर्ष

भारतभूमि अतीव उर्वरा थी, कृत्रिम जल-स्रोत जो कि राजकीय प्रबन्ध से बने थे, खेती के लिए बहुत लाभदायक थे । प्राकृतिक बडी-बडी नदियाँ अपने तट के भूभाग को सदैव उर्वर बनाती थी । एक वर्ष मे दो बार अन्न काटे जाते थे, यदि किसी कारण से एक फसल ठीक न हुई, तो दूसरी अवश्य इतनी होती कि भारतवर्ष को अकाल का सामना नही करना पडता था । कृषक लोग बहुत शान्तिप्रिय होते थे । युद्ध आदि के समय मे भी कृषक लोग आनन्द से हल चलाते थे । उत्पन्न हुए अन्न का चतुर्थांश राजकोश मे जाता था । खेती की उन्नति की ओर राजा का भी विशेष ध्यान रहता था । कृषक लोग आनन्द में अपना जीवन व्यतीत करते थे ।

दलदलो मे अथवा नदियो के तटस्थ भूभाग मे, फल-फूल भी बहुतायत से उगते थे और ये सुस्वादु तथा गुणदायक होते थे ।

जानवर भी यहाँ अनेक प्रकार के यूनानियो ने देखे थे । वे कहते है कि चौपाये यहाँ जितने सुन्दर और बलिष्ठ होते थे, वैसे अन्यत्र नही ।

यहाँ के सुन्दर बैलो को सिकन्दर ने यूनान भी भेजा था। जानवरो में जगली और पालतू सब प्रकार के यहाँ मिलते थे। पक्षी भी भिन्न-भिन्न प्रदेशो मे बहुत प्रकार के थे, जो अपने घोसलो मे बैठ कर भारत के सुस्वादु फल खाकर कमनीय कण्ठ से उसकी जय मनाते थे। धातु भी यहाँ प्राय सब उत्पन्न होते थे। सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा और जस्ता इत्यादि यहाँ के खानो मे से निकलते और उनसे अनेक प्रकार के उपयोगी अस्त्र-शस्त्र, साज-आभूषण इत्यादि प्रस्तुत होते थे। शिल्प यहाँ का बहुत उन्नत अवस्था मे था, क्योकि उसके व्यवसायी सब प्रकार के कर से मुक्त होते थे। यही नही, उनको राजा से सहायता भी मिलती थी जिससे कि वे स्वच्छन्द होकर अपना कार्य करे। क्या विधि-विडम्बना है, उसी भारत के शिल्प की, जहाँ के बनाए आडम्बर तथा शिल्प की वस्तुओ को देखकर यूनानियो ने कहा था कि 'भारत की राजधानी पाटलीपुत्र को देखकर फारस की राजधानी कुछ भी नही प्रतीत होती।'

शिल्पकार राज-कर से मुक्त होने के कारण राजा और प्रजा दोनो के हितकारी यन्त्र बनाता था, जिससे कार्यो मे सुगमता होती थी।

प्लिनी कहता है कि 'भारतवर्ष मे मनुष्य पाँच वर्ग के है—एक जो लोग राजसभा में कार्य करते है, दूसरे सिपाही, तीसरे व्यापारी, चौथे कृषक और एक पाँचवाँ वर्ग भी है जो कि दार्शनिक कहलाता है।'

पहले वर्ग के लोग सम्भवत ब्राह्मण थे जो कि नीतिज्ञ होकर राजसभा मे धर्माधिकार का कार्य करते थे।

और सिपाही लोग अवश्य क्षत्रिय ही थे। व्यापारियो का वणिक् सम्प्रदाय था। कृषक लोग शूद्र अथवा दास थे, पर वह दासत्व सुसभ्य लोगो की गुलामी नही थी।

पाँचवाँ वर्ग उन ब्राह्मणो का था, जो ससार से एक प्रकार से अलग होकर ईश्वराराधना में अपना दिन बिताते तथा सदुपदेश देकर ससारी लोगो को आनन्दित करते थे। वे स्वयं यज्ञ करते थे और दूसरे का यज्ञ कराते थे, सम्भवत वे ही मनुष्यो का भविष्य कहते थे और

यदि उनका भविष्य कहना सत्य न होता तो वे फिर उस सम्मान की दृष्टि से नही देखे जाते थे ।

भारतवासियो का व्यवहार बहुत सरल था । यज्ञ को छोड कर वे मदिरा और कभी नही पीते थे । लोगो का व्यय इतना परिमित था कि वे सूद पर ऋण कभी नही लेते थे । भोजन वे लोग नियत समय मे तथा अकेले ही करते थे । व्यवहार के वे लोग बहुत सच्चे होते थे, झूठ से उन लोगो को घृणा थी । बारीक मलमल के कामदार कपडे पहन कर वे चलते थे । उन्हे सौन्दर्य का इतना ध्यान रहता था कि नौकर उन्हे छाता लगाकर चलता था । आपस मे मुकदमे बहुत कम होते थे ।

विवाह एक जोडी बैल देकर होता था और विशेष उत्सव मे आडम्बर से कार्य करते थे । तात्पर्य यह है कि, महाराज चक्रवर्ती चन्द्रगुप्त के शासन मे प्रजा शान्तिपूर्वक निवास करती थी और सब लोग आनन्द से अपना जीवन व्यतीत करते थे ।

शिल्प-वाणिज्य की अच्छी उन्नति थी । राजा और प्रजा मे विशेष सद्भाव था, राजा अपनी प्रजा के हित-साधन मे सदैव तत्पर रहता था । प्रजा भी अपनी भक्ति से राजा को सन्तुष्ट रखती थी । चक्रवर्ती चन्द्रगुप्त का शासन-काल भारत का स्वर्णयुग था ।

चाणक्य

इनके बहुत-से नाम मिलते है—विष्णुगुप्त, कौटिल्य, चाणक्य, वात्स्यायन, द्रुमिल इत्यादि इनके प्रसिद्ध नाम है । भारतीय पर्यटक इन्हे दक्षिण देशीय कोकणस्थ ब्राह्मण लिखते है और इसके प्रमाण मे वे लिखते है कि दक्षिणदेशीय ब्राह्मण प्राय कूटनीतिपटु होते है । चाणक्य की कथाओ मे मिलता है कि वह श्यामवर्ण के पुरुष तथा कुरूप थे, क्योकि इसी कारण से वह नन्द की सभा से श्राद्ध के समय हटाये गए । जैनियो के मत से चाणक्य गोल्ल-ग्रामवासी थे और जैन-धर्मावलम्बी थे । वह नन्द द्वारा अपमानित होने पर नन्द-वश का नाश

करने की प्रतिज्ञा करके वाहर निकल पडे और चन्द्रगुप्त से मिलकर उसे कौशल से नन्द-राज्य का स्वामी वना दिया।

वौद्ध लोग उन्हे तक्षशिला-निवासी ब्राह्मण वतलाते हैं और कहते हैं कि धननन्द को मार कर चाणक्य ही ने चन्द्रगुप्त को राज्य दिया। पुराणो मे मिलता है "कौटिल्यो नाम ब्राह्मण समुद्धरिष्यति।" अस्तु। सव की कथाओ का अनुमान करने से जाना जाता है कि चाणक्य ही चन्द्रगुप्त की उन्नति के मूल हैं।

कामदकीय नीतिसार मे लिखा है—

यस्याभिचारवज्रेण वज्रज्वलनतेजस।
पपात मूलत. श्रीमान्सुपर्वानन्दपर्वत.॥
एकाकी मत्रशक्त्या य शक्त शक्तिधरोपम.।
आजहार नृचन्द्राय चन्द्रगुप्ताय मेदिनीम्॥
नीतिशास्त्रामृत धीमानर्थशास्त्रमहोदधे।
य उद्दध्रे नमस्तस्मै विष्णुगुप्ताय वेधसे॥

चन्द्रगुप्त का प्रधान सहायक मत्री चाणक्य ही था। पर यह ठीक नही ज्ञात होता कि वह कहाँ का रहने वाला था। जैनियो के इतिहास से वौद्धो के इतिहास को लोग प्रामाणिक मानते है। हेमचन्द्र ने जिस भाव मे चाणक्य का चित्र अकित किया है, वह प्राय अस्वाभाविक घटनाओ से पूर्ण है।

जैन-ग्रन्थो और प्रवन्धो मे प्राय सभी को जैनधर्म मे किसी-न-किसी प्रकार आश्रय लेते हुए दिखाया गया है। यही वात चन्द्रगुप्त के सम्वन्ध में भी है। श्रवण वोलगोलावाले लेख के द्वारा जो किसी जैन मुनि का है, चन्द्रगुप्त को राज छोड़ कर यति-धर्म ग्रहण करने का प्रमाण दिया जाता है। अनेको ने तो यहाँ तक कह डाला है कि उसका साथी चाणक्य भी जैन था।

अर्थशास्त्र के मगलाचरण का प्रमाण देकर यह कहा जाता है कि (नम शुक्रवृहस्पतिभ्या) ऐसा मगलाचरण आचार्यो के प्रति कृतज्ञता-

सूचक वैदिक हिन्दुओ का नही हो सकता , क्योकि वे प्राय ईश्वर को नमस्कार करते है । किन्तु कामसूत्र के मगलाचरण के सम्बन्ध मे क्या होगा, जिसका मगलाचरण है "नमो धर्मार्थकामेभ्यो ।" इसमे भी तो ईश्वर की वदना नही की गई है । तो क्या वात्स्यायन भी जैन थे ? इसलिए यह सब बाते व्यर्थ है । जैनो के अतिरिक्त जिन लोगो का चरित्र उन लोगो ने लिखा है, उसे अद्‌भुत, कुत्सित और अप्रासगिक बना डाला है । स्पष्ट प्रतीत होता है कि कुछ भारतीय चरित्रो को जैन ढाँचे मे ढालने का जैन सस्कृत-साहित्य द्वारा असफल प्रयत्न किया गया है । यहाँ तक उन लोगो ने लिख डाला है कि चन्द्रगुप्त को भूख लगी तो चाणक्य ने एक ब्राह्मण के पेट से गुलगुले निकाल कर खिलाए । ऐसी अनेक आश्चर्यजनक कपोल-कल्पनाओ के आधार पर चन्द्रगुप्त और चाणक्य को जैन बनाने का प्रयत्न किया जाता है ।

इसलिए बौद्धो के विवरण की ओर ही ध्यान आकर्षित होता है । बौद्ध लोग कहते है कि "चाणक्य तक्षशिला-निवासी थे" और इधर हम देखते है कि तक्षशिला * में उस समय विद्यालय था जहाँ कि पाणिनि, जीवक आदि पढ चुके थे । अस्तु, सम्भवत चाणक्य, जैसा कि बौद्ध लोग कहते है, तक्षशिला में रहते या पढते थे । जब हम चन्द्रगुप्त की सहायक सेना की ओर ध्यान देते है, तो यह प्रत्यक्ष ज्ञात होता है कि चाणक्य का तक्षशिला से अवश्य सम्बन्ध था , क्योकि चाणक्य अवश्य उनसे परिचित थे । नही तो वे लोग चन्द्रगुप्त को क्या जानते ? हमारा यही अनुमान है कि चाणक्य मगध के ब्राह्मण थे । क्योकि मगध में

* कनिंगहम साहब वर्तमान शाह देहरी के समीप मे तक्षशिला का होना मानते है । रामचन्द्र के भाई भरत के दो पुत्रो के नाम से उसी ओर दो नगरियाँ बसाई गई थी, तक्ष के नाम से तक्षशिला और पुष्कल के नाम से पुष्कलावती । तक्षशिला का विद्यालय उस समय भारत के प्रसिद्ध विद्यालयो मे से एक था ।

नन्द की सभा मे वे अपमानित हुए थे। उनकी जन्मभूमि पाटली-पुत्र ही थी।

पाटलीपुत्र इस समय प्रधान नगरी थी, चाणक्य तक्षशिला में विद्याध्ययन करके वहाँ से लौट आये। किसी कारणवश वह राजा पर कुपित हो गए, जिसके बारे में प्राय सब विवरण मिलते-जुलते हैं। वह ब्राह्मण भी प्रतिज्ञा करके उठा कि आज से जब तक नन्दवश का नाश न कर लूँगा, शिखा न बाँधूँगा और फिर चन्द्रगुप्त को मिलाकर जो-जो कार्य उन्होंने किए, वह पाठको को ज्ञात ही है।

जहाँ तक ज्ञात होता है, चाणक्य वेदधर्मावलम्बी, कूटराजनीतिज्ञ, प्रखर प्रतिभावान और हठी थे।

उनकी नीति अनोखी होती थी और उनमे अलौकिक क्षमता थी, नीति-शास्त्र के आचार्यों मे उनकी गणना है। उनके बनाये नीचे लिखे हुए ग्रन्थ बतलाये जाते हैं—चाणक्यनीति, अर्थशास्त्र, कामसूत्र और न्यायभाष्य।

यह अवश्य कहना होगा कि वह मनुष्य बडा प्रतिभाशाली था जिसके बुद्धिबल-द्वारा, प्रशसित राजकार्य-क्रम से चन्द्रगुप्त ने भारत का साम्राज्य स्थापित करके उस पर राज्य किया।

अर्थशास्त्र मे स्वय चाणक्य ने लिखा है—

येन शस्त्र च शास्त्र च नन्दराजगता च भू।
अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिद कृतम्॥

काशी
सं० १९८८

—जयशङ्कर प्रसाद

चन्द्रगुप्त मौर्य्य

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

चाणक्य (विष्णुगुप्त)—	मौर्य्य साम्राज्य का निर्माता
चन्द्रगुप्त—	मौर्य्य-सम्राट्
नन्द—	मगध-सम्राट्
राक्षस—	मगध का अमात्य
वररुचि (कात्यायन)—	मगध का अमात्य
शकटार—	मगध का मन्त्री
आम्भीक—	तक्षशिला का राजकुमार
सिंहरण—	मालवगण-मुख्य का कुमार
पर्वतेश्वर—	पंजाब का राजा (ग्रीक ऐतिहासिकों का पोरस)
सिकन्दर—	ग्रीक-विजेता
फिलिप्स—	सिकन्दर का सत्रप
मौर्य्य-सेनापति—	चन्द्रगुप्त का पिता
एनीसाक्रीटीज—	सिकन्दर का सहचर
देवबल, नागदत्त, गण-मुख्य—	मालव गण-तन्त्र के पदाधिकारी
साइबर्टियस, मेगास्थनीज—	यवन-दूत
गान्धार-नरेश—	आम्भीक का पिता
सिल्यूकस—	सिकन्दर का सेनापति
दाण्ड्यायन—	एक तपस्वी

स्त्री-पात्र

अलका—	तक्षशिला की राजकुमारी
सुवासिनी—	शकटार की कन्या
कल्याणी—	मगध-राजकुमारी
नीला, लीला —	कल्याणी की सहेलियां
मालविका—	सिन्धु देश की कुमारी
कार्नेलिया—	सिल्यूकस की कन्या
मौर्य्य-पत्नी—	चन्द्रगुप्त की माता
एलिस—	कार्नेलिया की सहेली

प्रथम अंक

१

स्थान—तक्षशिला के गुरुकुल का मठ

चाणक्य और सिंहरण

चाणक्य—सौम्य, कुलपति ने मुझे गृहस्थजीवन मे प्रवेश करने की आज्ञा दे दी। केवल तुम्ही लोगो को अर्थशास्त्र पढाने के लिए ठहरा था; क्योकि इस वर्ष के भावी स्नातको को अर्थशास्त्र का पाठ पढा कर मुझ अकिञ्चन को गुरु-दक्षिणा चुका देनी थी।

सिंहरण—आर्य्य, मालवो को अर्थशास्त्र की उतनी आवश्यकता नही, जितनी अस्त्रशास्त्र की। इसीलिए मै पाठ मे पिछडा रहा, क्षमा-प्रार्थी हूँ।

चाणक्य—अच्छा, अब तुम मालव जाकर क्या करोगे ?

सिंह०—अभी तो मै मालव नही जाता। मुझे तक्षशिला की राजनीति पर दृष्टि रखने की आज्ञा मिली है।

चाणक्य—मुझे प्रसन्नता होती है कि, तुम्हारा अर्थशास्त्र पढना सफल होगा। क्या तुम जानते हो कि यवनो के दूत यहाँ क्यो आये है ?

सिंह०—मै उसे जानने की चेष्टा कर रहा हूँ। आर्य्यावर्त्त का भविष्य लिखने के लिए कुचक्र और प्रतारणा की लेखनी और मसि प्रस्तुत हो रही है। उत्तरापथ के खण्ड-राज द्वेष से जर्जर है। शीघ्र भयानक विस्फोट होगा।

[सहसा आम्भीक और अलका का प्रवेश]

आम्भीक—कैसा विस्फोट ? युवक, तुम कौन हो ?

सिंह०—एक मालव ।

आम्भीक——नही, विशेष परिचय की आवश्यकता है ।

सिंह०—तक्षशिला गुरुकुल का एक छात्र ।

आम्भीक—देखता हूँ कि तुम दुर्विनीत भी हो ।

सिंह०—कदापि नही राजकुमार ! विनम्रता के साथ निर्भीक होना मालवो का वशानुगत-चरित्र है, और मुझे तो तक्षशिला की शिक्षा का भी गर्व है ।

आम्भीक—परन्तु तुम किसी विस्फोट की बाते अभी कर रहे थे ! और चाणक्य, क्या तुम्हारा भी इसमे कुछ हाथ है ?

[चाणक्य चुप रहता है]

आम्भीक—(क्रोध से)—बोलो ब्राह्मण, मेरे राज्य मे रह कर, मेरे अन्न से पल कर, मेरे ही विरुद्ध कुचक्रो का सृजन !

चाणक्य—राजकुमार, ब्राह्मण न किसी के राज्य मे रहता है और न किसी के अन्न से पलता है, स्वराज्य मे विचरता है और अमृत हो कर जीता है । वह तुम्हारा मिथ्या गर्व है । ब्राह्मण सब कुछ सामर्थ्य रखने पर भी, स्वेच्छा से इन माया-स्तूपो को ठुकरा देता है, प्रकृति के कल्याण के लिए अपने ज्ञान का दान देता है ।

आम्भीक—वह काल्पनिक महत्त्व मायाजाल है; तुम्हारे प्रत्यक्ष नीच कर्म्म उन पर पर्दा नही डाल सकते ।

चाणक्य—सो कैसे होगा अविश्वासी क्षत्रिय ! इसी से दस्यु और म्लेच्छ साम्राज्य बना रहे है और आर्य्य-जाति पतन के कगार पर खडी एक धक्के की राह देख रही है ।

आम्भीक—और तुम धक्का देने का कुचक्र विद्यार्थियो को सिखा रहे हो !

सिंह०—विद्यार्थी और कुचक्र! असम्भव । यह तो वे ही कर सकते है, जिनके हाथ में कुछ अधिकार हो—जिनका स्वार्थ समुद्र से भी विशाल

और सुमेरु से भी कठोर हो, जो यवनो की मित्रता के लिए स्वय वाल्हीक तक ..

आम्भीक—बस-बस दुर्धर्ष युवक ! बता, तेरा अभिप्राय क्या है ?

सिंह०—कुछ नहीं।

आम्भीक—नही, बताना होगा। मेरी आज्ञा है।

सिंह०—गुरुकुल मे केवल आचार्य की आज्ञा शिरोधार्य होती है; अन्य आज्ञाएँ, अवज्ञा के कान से सुनी जाती है राजकुमार !

अलका—भाई ! इस वन्य निर्भर के समान स्वच्छ और स्वच्छन्द हृदय मे कितना बलवान वेग है ! यह अवज्ञा भी स्पृहणीय है। जाने दो।

आम्भीक—चुप रहो अलका, यह ऐसी बात नही है, जो यो ही उडा दी जाय। इसमे कुछ रहस्य है।

[**चाणक्य चुपचाप मुस्कराता है**]

सिंह०—हाँ-हाँ, रहस्य है ! यवन-आक्रमणकारियो के पुष्कल-स्वर्ण से पुलकित होकर, आर्य्यावर्त्त की सुख-रजनी की शान्ति-निद्रा मे, उत्तरापथ की अर्गला धीरे से खोल देने का रहस्य है। क्यो राजकुमार ! संभवत तक्षशिलाधीश वाल्हीक तक इसी रहस्य का उदघाटन करने गये थे ?

आम्भीक—(**पैर पटक कर**)—ओह, असह्य ! युवक, तुम बन्दी हो।

सिंह०—कदापि नही , मालव कदापि बन्दी नही हो सकता।

[**आम्भीक तलवार खींचता है।**]

चन्द्रगुप्त—(**सहसा प्रवेश करके**)—ठीक है, प्रत्येक निरपराध आर्य्य स्वतन्त्र है, उसे कोई बन्दी नही बना सकता है। यह क्या राजकुमार ! खड्ग को कोश मे स्थान नही है क्या ?

सिंह०—(**व्यंग्य से**) वह तो स्वर्ण से भर गया है !

आम्भीक—तो तुम सब कुचक्र मे लिप्त हो। और इस मालव को तो मेरा अपमान करने का प्रतिफल—मृत्यु-दण्ड—अवश्य भोगना पडेगा।

चन्द्र०—क्यों, क्या वह एक निस्सहाय छात्र तुम्हारे राज्य में शिक्षा पाता है और तुम एक राजकुमार हो—बस इसीलिए ?

[आम्भीक तलवार चलाता है। चन्द्रगुप्त अपनी तलवार पर उसे रोकता है ; आम्भीक की तलवार छूट जाती है। वह निस्सहाय होकर चन्द्रगुप्त के आक्रमण की प्रतीक्षा करता है। बीच में अलका आ जाती है।]

सिंह०—वीर चन्द्रगुप्त, बस। जाओ राजकुमार, यहाँ कोई कुचक्र नहीं है, अपने कुचक्रों से अपनी रक्षा स्वयं करो।

चाणक्य—राजकुमारी, मैं गुरुकुल का अधिकारी हूँ। मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम क्रोधाभिभूत कुमार को लिवा जाओ। गुरुकुल में शस्त्रों का प्रयोग शिक्षा के लिए होता है, द्वन्द्व-युद्ध के लिए नहीं। विश्वास रखना, इस दुर्व्यवहार का समाचार महाराज के कानों तक न पहुँचेगा।

अलका—ऐसा ही हो। चलो भाई !

[क्षुब्ध आम्भीक उसके साथ जाता है।]

चाणक्य—(चन्द्रगुप्त से)—तुम्हारा पाठ समाप्त हो चुका है और आज का यह काण्ड असाधारण है। मेरी सम्मति है कि तुम शीघ्र तक्षशिला का परित्याग कर दो। और सिंहरण, तुम भी।

चन्द्र०—आर्य्य, हम मागध हैं और यह मालव। अच्छा होता कि यहीं गुरुकुल में हम लोग शस्त्र की परीक्षा भी देते।

चाणक्य—क्या यही मेरी शिक्षा है ? बालकों की-सी चपलता दिखलाने का यह स्थल नहीं। तुम लोगों को समय पर शस्त्र का प्रयोग करना पड़ेगा। परन्तु अकारण रक्तपात नीति-विरुद्ध है।

चन्द्र०—आर्य्य ! संसार-भर की नीति और शिक्षा का अर्थ मैंने यही समझा है कि आत्म-सम्मान के लिए मर-मिटना ही दिव्य जीवन है। सिंहरण मेरा आत्मीय है, मित्र है, उसका मान मेरा ही मान है।

चाणक्य—देखूँगा कि इस आत्म-सम्मान की भविष्य-परीक्षा में तुम कहाँ तक उत्तीर्ण होते हो !

सिंह०—आपके आशीर्वाद से हम लोग अवश्य सफल होंगे।

चाणक्य—तुम मालव हो और यह मागध ; यही तुम्हारे मान का अवसान है न ? परन्तु आत्म-सम्मान इतने ही से सन्तुष्ट नही होगा। मालव और मागध को भूलकर जब तुम आर्य्यावर्त्त का नाम लोगे, तभी वह मिलेगा। क्या तुम नही देखते हो कि आगामी दिवसो में, आर्य्यावर्त्त के सब स्वतंत्र राष्ट्र एक के अनन्तर दूसरे विदेशी विजेता से पददलित होगे ? आज जिस व्यंग्य को लेकर इतनी घटना हो गई है, वह बात भावी गाधार-नरेश आम्भीक के हृदय मे, शल्य के समान चुभ गई है। पञ्चनद-नरेश पर्वतेश्वर के विरोध के कारण, यह क्षुद्र-हृदय आम्भीक यवनो का स्वागत करेगा और आर्य्यावर्त्त का सर्वनाश होगा।

चन्द्र०—गुरुदेव, विश्वास रखिए ; यह सब कुछ नही होने पावेगा। यह चन्द्रगुप्त आपके चरणो की शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करता है, कि यवन यहाँ कुछ न कर सकेगे।

चाणक्य—साधु ! तुम्हारी प्रतिज्ञा अचल हो। परन्तु इसके लिए पहले तुम मगध जाकर साधन-सम्पन्न बनो। यहाँ समय बिताने का प्रयोजन नही। मै भी पञ्चनद-नरेश से मिलता हुआ मगध आऊँगा। और सिहरण, तुम भी सावधान !

सिंह०—आर्य्य, आपका आशीर्वाद ही मेरा रक्षक है।

[**चन्द्रगुप्त और चाणक्य का प्रस्थान**]

सिंह०—एक अग्निमय गन्धक का स्रोत आर्य्यावर्त्त के लौह-अस्त्रागार में घुस कर विस्फोट करेगा। चञ्चला रणलक्ष्मी इन्द्र-धनुष-सी विजयमाला हाथ मे लिए उस सुन्दर नील-लोहित प्रलय-जलद में विचरण करेगी और वीर-हृदय मयूर-से नाचेगे। तब आओ देवि ! स्वागत !!

[**अलका का प्रवेश**]

अलका—मालव-वीर, अभी तुमने तक्षशिला का परित्याग नही किया ?

सिंह०—क्यो देवि ? क्या मै यहाँ रहने के उपयुक्त नही हूँ ?

अलका—नही, मै तुम्हारी सुख-शान्ति के लिए चिन्तित हूँ ! भाई ने

तुम्हारा अपमान किया है, पर वह अकारण न था ; जिसका जो मार्ग है उसपर वह चलेगा। तुमने अनधिकार चेष्टा की थी ! देखती हूँ कि प्राय मनुष्य, दूसरो को अपने मार्ग पर चलाने के लिए रुक जाता है, और अपना चलना वन्द कर देता है।

सिंह०—परन्तु भद्रे, जीवन-काल मे भिन्न-भिन्न मार्गों की परीक्षा करते हुए, जो ठहरता हुआ चलता है, वह दूसरो को लाभ ही पहुँचाता है। यह कष्टदायक तो है ; परन्तु निष्फल नही।

अलका—किन्तु मनुष्य को अपने जीवन और सुख का भी ध्यान रखना चाहिए।

सिंह०—मानव कव दानव से भी दुर्दान्त, पशु से भी वर्वर, और पत्थर मे भी कठोर, करुणा के लिए निरवकाश हृदयवाला हो जाएगा, नही जाना जा सकता। अतीत सुखो के लिए सोच क्यो, अनागत भविष्य के लिए भय क्यो और वर्तमान को मै अपने अनुकूल वना ही लूँगा, फिर चिन्ता किस वात की ?

अलका—मालव, तुम्हारे देश के लिए तुम्हारा जीवन अमूल्य है, और वही यहाँ आपत्ति मे है।

सिंह०—राजकुमारी, इस अनुकम्पा के लिए कृतज्ञ हुआ। परन्तु मेरा देश मालव ही नही, गाधार भी है। यही क्या, समग्र आर्य्यावर्त्त है, इसलिए मै............

अलका—(**आश्चर्य्य से**)—क्या कहते हो ?

सिंह०—गाधार आर्य्यावर्त्त से भिन्न नही है, इसीलिए उसके पतन को मै अपना अपमान समझता हूँ।

अलका—(**नि.श्वास लेकर**)—इसका मै अनुभव कर रही हूँ। परन्तु जिस देश में ऐसे वीर युवक हो, उसका पतन असम्भव है। मालव-वीर, तुम्हारे मनोवल मे स्वतत्रता है और तुम्हारी दृढ भुजाओ मे आर्य्यावर्त्त के रक्षण की शक्ति है, तुम्हे सुरक्षित रहना ही चाहिए। मै भी आर्य्यावर्त्त की वालिका हूँ—तुमसे अनुरोध करती हूँ कि तुम शीघ्र

ाधार छोड दो। मैं आम्भीक को शक्तिभर पतन से रोकूँगी, परन्तु उसके न मानने पर तुम्हारी आवश्यकता होगी। जाओ वीर!

सिंह०—अच्छा राजकुमारी, तुम्हारे स्नेहानुरोध से मैं जाने के लिए बाध्य हो रहा हूँ। शीघ्र ही चला जाऊँगा देवि! किन्तु यदि किसी प्रकार सिन्धु की प्रखर धारा को यवन सेना न पार कर सकती....।

अलका—मैं चेष्टा करूँगी वीर, तुम्हारा नाम?

सिंह०—मालवगण के राष्ट्रपति का पुत्र सिंहरण।

अलका—अच्छा, फिर कभी।

[दोनो एक-दूसरे को देखते हुए प्रस्थान करते हैं।]

२

मगध-सम्राट् का विलास-कानन

विलासी युवक और युवतियो का विहार

नन्द—(**प्रवेश करके**)—आज वसन्त-उत्सव है क्या ?

एक युवक—जय हो देव ! आप की आज्ञा से कुसुमपुर के नागरिको ने आयोजन किया है।

नन्द—परन्तु मदिरा का तो तुम्हारे समाज मे अभाव है, फिर आमोद कैसा ?—(**एक युवती से**)—देखो-देखो—तुम सुन्दरी हो, परन्तु तुम्हारे यौवन का विभ्रम अभी सकोच की अर्गला से जकड़ा हुआ है। तुम्हारी आँखो में काम का सुकुमार सकेत नही, अनुराग की लाली नही ! फिर कैसा प्रमोद !

एक युवती—हम लोग तो निमत्रित नागरिक है देव ! इसका दायित्व तो निमत्रण देने वाले पर है।

नन्द—वाह, यह अच्छा उलाहना रहा !—(**अनुचर से**)—मूर्ख ! अभी और कुछ सुनावेगा ? तू नही जानता कि मै ब्रह्मास्त्र से अधिक इन सुन्दरियों के कुटिल कटाक्षो से डरता हूँ ? ले आ—शीघ्र ले आ—नागरिको पर तो मै राज्य करता हूँ, परन्तु मेरी मगध की नागरिकाओं का शासन मेरे ऊपर है। श्रीमती, सबसे कह दो—नागरिक नन्द, कुसुमपुर के कमनीय कुसुमो से अपराध के लिए क्षमा माँगता है और आज के दिन वह तुम लोगो का कृतज्ञ सहचर-मात्र है।

[**अनुचर लोग प्रत्येक कुन्ज में मदिराकलश और चषक पहुँचाते है। राक्षस और सुवासिनी का प्रवेश, पीछे-पीछे कुछ नागरिक।**]

राक्षस—सुवासिनी ! एक पात्र और ; चलो इस कुन्ज मे।

सुवा०—नही, अब मै न सँभल सकूँगी।

राक्षस—फिर इन लोगो से कैसे पीछा छूटेगा ?

सुवा०—मेरी एक इच्छा है।

एक नागरिक—क्या इच्छा है सुवासिनी, हम लोग अनुचर है। केवल एक सुन्दर आलाप की, एक कोमल मूर्च्छना की लालसा है।

सुवा०—अच्छा तो अभिनय के साथ।

सब—(**उल्लास से**)—सुन्दरियो की रानी सुवासिनी की जय!

सुवा०—परन्तु राक्षस को कच का अभिनय करना पडेगा।

एक०—और तुम देवयानी, क्यो? यही न? राक्षस सचमुच राक्षस होगा, यदि इसमें आनाकानी करे तो...चलो राक्षस!

दूसरा—नही मूर्ख! आर्य्य राक्षस कह, इतने बडे कला-कुशल विद्वान् को किस प्रकार सम्बोधित करना चाहिए, तू इतना भी नही जानता! आर्य्य राक्षस! इन नागरिको की प्रार्थना से इस कष्ट को स्वीकार कीजिए।

[राक्षस उपयुक्त स्थान ग्रहण करता है। कुछ मूक अभिनय, फिर उसके बाद सुवासिनी का भाव-सहित गान—]

तुम कनक किरण के अन्तराल मे
लुक-छिप कर चलते हो क्यो?
नत मस्तक गर्व वहन करते
यौवन के घन, रस कन दरते।
हे लाज भरे सौन्दर्य!
बता दो मौन बने रहते हो क्यो?
अधरो के मधुर कगारो मे
कल-कल ध्वनि की गुञ्जारो मे
मधुसरिता-सी यह हँसी
तरल अपनी पीते रहते हो क्यो?
बेला विभ्रम की बीत चली
रजनीगधा की कली खिली—
अब सान्ध्य मलय-आकुलित
दुकूल कलित हो, यो छिपते हो क्यो?

['साधु-साधु' की ध्वनि]

नन्द—उस अभिनेत्री को यहाँ बुलाओ।

[सुवासिनी नन्द के समीप आकर प्रणत होती है।]

नन्द—तुम्हारा अभिनय तो अभिनय नही हुआ ?

नागरिक—अपितु वास्तविक घटना, जैसी देखने मे आवे वैसी ही।

नन्द—तुम बडे कुशल हो। ठीक कहा।

सुवासिनी—तो मुझे दण्ड मिले। आज्ञा कीजिए देव !

नन्द—मेरे साथ एक पात्र।

सुवासिनी—परन्तु देव एक बड़ी भूल होगी।

नन्द—वह क्या ?

सुवासिनी—आर्य्य राक्षस का अभिनय-पूर्ण गान नही हुआ।

नन्द—राक्षस !

नागरिक—यही है, देव !

[राक्षस आकर प्रणाम करता है।]

नन्द—वसन्तोत्सव की रानी की आज्ञा से तुम्हे गाना होगा।

राक्षस—उसका मूल्य होगा एक पात्र कादम्ब।

[सुवासिनी पात्र भर कर देती है।]

[सुवासिनी मान का मूक अभिनय करती है, राक्षस सुवासिनी के सम्मुख अभिनय सहित गाता है—]

निकल मत बाहर दुर्बल आह !
लगेगा तुझे हँसी का शीत
शरद नीरद माला के बीच
तड़प ले चपला-सी भयभीत

पड रहे पावन प्रेम-फुहार
जलन कुछ-कुछ है मीठी पीर
सम्हाले चल कितनी है दूर
प्रलय तक व्याकुल हो न अधीर

अश्रुमय सुन्दर विरह निशीथ
भरे तारे न ढुलकते आह !
न उफना दे आँसू हैं भरे
इन्हीं आँखो में उनकी चाह

काकली-सी बनने की तुम्हें
लगन लग जाय न हे भगवान्
पपीहा का पी सुनता कभी !
अरे कोकिल की देख दगा न ;

हृदय है पास, साँस की राह
चले आना-जाना चुपचाप
अरे छाया बन, छू मत उसे
भरा है तुझमें भीषण ताप

हिला कर धड़कन से अविनीत
जगा मत, सोया है सुकुमार
देखता है स्मृतियों का स्वप्न,
हृदय पर मत कर अत्याचार।

कई नागरिक—स्वर्गीय अमात्य वक्रनास के कुल की जय !

नन्द—क्या कहा, वक्रनास का कुल ?

नागरिक—हाँ देव, आर्य्य राक्षस उन्हीं के भ्रातुष्पुत्र हैं।

नन्द—राक्षस ! आज से तुम मेरे अमात्यवर्ग में नियुक्त हुए। तुम तो कुसुमपुर के एक रत्न हो !

[उसे माला पहनाता है और शस्त्र देता है]

सब—सम्राट् की जय हो ! अमात्य राक्षस की जय हो !

नन्द—और सुवासिनी, तुम मेरी अभिनय-शाला की रानी !

[सब हर्ष प्रकट करते हुए जाते हैं]

३

पाटलिपुत्र में एक भग्नकुटीर

चाणक्य—(प्रवेश करके)—झोपडी ही तो थी, पिताजी यहीं मुझे गोद मे विठा कर राज-मन्दिर का सुख अनुभव करते थे। ब्राह्मण थे, ऋत और अमृत जीविका से सन्तुष्ट थे, पर वे भी न रहे! कहाँ गये ? कोई नही जानता। मुझे भी कोई नही पहचानता। यही तो मगध का राष्ट्र है। प्रजा की खोज है किसे ? वृद्ध दरिद्र ब्राह्मण कही ठोकरें खाता होगा या कही मर गया होगा !

[एक प्रतिवेशी का प्रवेश]

प्रतिवेशी—(देखकर)—कौन हो जी तुम ? इधर के घरो को वडी देर से क्या घूर रहे हो ?

चाणक्य—ये घर है, जिन्हे पशु की खोह कहने मे भी सकोच होता है ? यहाँ कोई स्वर्ण-रत्नो का ढेर नही, जो लूटने का भय हो।

प्रतिवेशी—युवक, क्या तुम किसी को खोज रहे हो ?

चाणक्य—हाँ, खोज रहा हूँ, यही झोपडी मे रहनेवाले वृद्ध ब्राह्मण चणक को। आजकल वे कहाँ है, वता सकते हो ?

प्रतिवेशी—(सोचकर)—ओहो, कई वरस हुए, वह तो राजा की आज्ञा से निर्वासित कर दिया गया है। (हँसकर)—वह ब्राह्मण भी वडा हठी था। उसने राजा नन्द के विरुद्ध प्रचार करना आरम्भ किया था। सो भी क्यो, एक मन्त्री शकटार के लिए। उसने सुना कि राजा ने शकटार का वन्दीगृह मे वध करवा डाला। ब्राह्मण ने नगर में इस अन्याय के विरुद्ध आतक फैलाया। सवसे कहने लगा कि—"यह महापद्म का जारज पुत्र नन्द—महापद्म का हत्याकारी नन्द—मगध में राक्षसी राज्य कर रहा है। नागरिको, सावधान !

चाणक्य—अच्छा, तव क्या हुआ ?

प्रतिवेशी—वह पकड़ा गया। सो भी कव, जव एक दिन अहेर की

यात्रा करते हुए नन्द के लिए राजपथ में मुक्तकंठ से नागरिको ने अनादर के वाक्य कहे । नन्द ने ब्राह्मण को समझाया। यह भी कहा कि तेरा मित्र शकटार बन्दी है, मारा नही गया। पर वह बड़ा हठी था; उसने न माना, न ही माना। नन्द ने भी चिढ कर उसका ब्राह्मस्व बौद्ध-विहार में दे दिया और उसे मगध से निर्वासित कर दिया। यही तो उसकी झोपडी है।

[जाता है]

चाणक्य—(उसे बुलाकर)—अच्छा एक बात और बताओ।

प्रति०—क्या पूछते हो जी, तुम इतना जान लो कि नन्द को ब्राह्मणो से घोर शत्रुता है और वह बौद्धधर्मानुयायी हो गया है।

चाणक्य—होने दो ; परन्तु यह तो बताओ—शकटार का कुटुम्ब कहाँ है ?

प्रति०—कैसे मनुष्य हो? अरे राज-कोपानल मे वे सब जल मरे। इतनी-सी बात के लिए मुझे लौटाया था—छि !

[जाना चाहता है]

चाणक्य—हे भगवान्! एक बात दया करके और बता दो—शकटार की कन्या सुवासिनी कहाँ है ?

प्रति०—(जोर से हंसता है)—युवक! वह बौद्ध-विहार मे चली गई थी, परन्तु वहाँ भी न रह सकी। पहले तो अभिनय करती फिरती थी, आजकल कहाँ है, नही जानता।

[जाता है]

चाणक्य—पिता का पता नही ; झोपड़ी भी न रह गई। सुवासिनी अभिनेत्री हो गई—सम्भवत: पेट की ज्वाला से। एक साथ दो-दो कुटुम्बों का सर्वनाश और कुसुमपुर फूलो की सेज में ऊँघ रहा है! क्या इसीलिए राष्ट्र की शीतल छाया का सगठन मनुष्य ने किया था! मगध! मगध! सावधान! इतना अत्याचार! सहना असम्भव है। तुझे उलट दूँगा! नया बनाऊँगा, नही तो नाश ही करूँगा!—(ठहरकर)—एक बार

चलूँ, नन्द से कहूँ। नही, परन्तु मेरी भूमि, मेरी वृत्ति, वही मिल जाय, मैं शास्त्र-व्यवसायी न रहूँगा, मैं कृषक बनूँगा। मुझे राष्ट्र की भलाई-बुराई से क्या। तो चलूँ।—(देखकर)—यह एक लकड़ी का स्तम्भ अभी उसी झोपडी का खड़ा है, इसके साथ मेरे बाल्यकाल की सहस्रों भाँवरियाँ लिपटी हुई हैं, जिन पर मेरी धवल मधुर हँसी का आवरण चढा रहता था! शैशव की स्निग्ध स्मृति! विलीन हो जा!

[खम्भा खींच कर गिराता हुआ चला जाता है]

४

कुसुमपुर के सरस्वती-मन्दिर के उपवन का पथ

राक्षस—सुवासिनी ! हठ न करो ।

सुवा०—नही, उस ब्राह्मण को दण्ड दिये बिना सुवासिनी जी नही सकती अमात्य, तुमको करना होगा। मै बौद्धस्तूप की पूजा करके आ रही थी, उसने व्यग किया और वह बड़ा कठोर था, राक्षस ! उसने कहा—'वेश्याओ के लिए भी एक धर्म की आवश्यकता थी, चलो अच्छा ही हुआ । ऐसे धर्म के अनुगत पतितो की भी कमी नही।'

राक्षस—यह उसका अन्याय था ।

सुवा०—परन्तु अन्याय का प्रतिकार भी है। नही तो मै समझूँगी कि तुम भी वैसे ही एक कठोर ब्राह्मण हो।

राक्षस—मै वैसा हूँ कि नही, यह पीछे मालूम होगा। परन्तु सुवासिनी, मै स्वय हृदय से बौद्धमत का समर्थक हूँ; केवल उसकी दार्शनिक सीमा तक—इतना ही कि ससार दु खमय है ।

सुवा०—इसके बाद ?

राक्षस—मै इस क्षणिक जीवन की घडियो को सुखी बनाने का पक्षपाती हूँ। और तुम जानती हो कि मैने ब्याह नही किया; परन्तु भिक्षु भी न बन सका।

सुवा०—तब आज से मेरे कारण तुमको राजचक्र मे बौद्धमत का समर्थन करना होगा।

राक्षस—मै प्रस्तुत हूँ।

सुवा०—फिर लो मै तुम्हारी हूँ । मुझे विश्वास है कि दुराचारी सदाचार के द्वारा शुद्ध हो सकता है, और बौद्धमत इसका समर्थन करता है, सबको शरण देता है। हम दोनो उपासक होकर सुखी बनेगे।

राक्षस—इतना बडा सुख-स्वप्न का जाल आँखो मे न फैलाओ।

सुवा०—नही प्रिय! मै तुम्हारी अनुचरी हूँ। मै नन्द की विलास-लीला का क्षुद्र उपकरण बनकर नही रहना चाहती ।

[जाती है]

राक्षस—एक परदा उठ रहा है, या गिर रहा है, समझ में नही आता—(**आंख मीचकर**)—सुवासिनी! कुसुमपुर का स्वर्गीय कुसुम मैं हस्तगत कर लूँ? नही, राजकोप होगा! परन्तु जीवन वृथा है। मेरी विद्या, मेरा परिष्कृत विचार सब व्यर्थ है। सुवासिनी एक लालसा है, एक प्यास है। वह अमृत है, उसे पाने के लिए सौ बार मरूँगा।

[नेपथ्य से—हटो, मार्ग छोड़ दो]

राक्षस—कोई राजकुल की सवारी है? तो चलूँ।

[जाता है]

[रक्षियो के साथ शिविका पर राजकुमारी कल्याणी का प्रवेश]

कल्याणी—(**शिविका से उतरती हुई लीला से**)—शिविका उद्यान के बाहर ले जाने के लिए कहो और रक्षी लोग भी वही ठहरें।

[शिविका ले कर रक्षक जाते है]

कल्याणी—(**देखकर**)— आज सरस्वती-मन्दिर मे कोई समाज है क्या? जा तो नीला देख आ ।

[नीला जाती है]

लीला—राजकुमारी, चलिये इस श्वेत शिला पर बैठिये। यहाँ अशोक की छाया बडी मनोहर है। अभी तीसरे पहर का सूर्य कोमल होने पर भी स्पृहणीय नही।

कल्याणी—चल।

[दोनो जाकर बैठती है, नीला आती है]

नीला—राजकुमारी, आज तक्षशिला से लौटे हुए स्नातक लोग सरस्वती-दर्शन के लिए आये है।

कल्याणी—क्या सब लौट आये है?

नीला—यह तो न जान सकी।

कल्याणी—अच्छा, तू भी बैठ। देख, कैसी सुन्दर माधवी लता फैल रही है। महाराज के उद्यान मे भी लताएँ ऐसी हरी-भरी नही, जैसे राज-आतक से वे भी डरी हुई हो। सच नीला, मै देखती हूँ कि महाराज से कोई स्नेह नही करता, डरते भले ही हो।

नीला—सखी, मुझ पर उनका कन्या-सा ही स्नेह है, परन्तु मुझे डर लगता है।

कल्याणी—मुझे इसका बडा दुख है। देखती हूँ कि समस्त प्रजा उनसे त्रस्त और भयभीत रहती है, प्रचण्ड शासन करने के कारण उनका बडा दुर्नाम है।

नीला—परन्तु इसका उपाय क्या है? देख लीला, वे दो कौन इधर आ रहे है। चल, हम लोग छिप जायँ।

[सब कुंज में चली जाती हैं; दो ब्रह्मचारियो का प्रवेश]

एक ब्रह्म०—धर्म्मपालित, मगध को उन्माद हो गया है। वह जनसाधारण के अधिकार अत्याचारियो के हाथ मे देकर विलासिता का स्वप्न देख रहा है। तुम तो गए नही, मै अभी उत्तरापथ से आ रहा हूँ। गणतन्त्रो मे सब प्रजा वन्यवीरुध के समान स्वच्छन्द फल-फूल रही है। इधर उन्मत्त मगध, साम्राज्य की कल्पना मे निमग्न है।

दूसरा—स्नातक, तुम ठीक कह रहे हो। महापद्म का जारज-पुत्र नन्द केवल शस्त्र-बल और कूटनीति के द्वारा सदाचारो के शिर पर ताण्डव-नृत्य कर रहा है। वह सिद्धान्त-विहीन नृशस, कभी बौद्धो का पक्षपाती, कभी वैदिको का अनुयायी बनकर दोनो मे भेदनीति चलाकर बल-सञ्चय करता रहता है। मूर्ख जनता धर्म की ओट मे नचाई जा रही है। परन्तु तुम देश-विदेश देखकर आए हो, आज मेरे घर पर तुम्हारा निमन्त्रण है, वहाँ सब को तुम्हारी यात्रा का विवरण सुनने का अवसर मिलेगा।

पहिला—चलो। **(दोनो जाते है, कल्याणी बाहर आती है।)**

कल्याणी—सुन कर हृदय की गति रुकने लगती है। इतना कदर्थित

राजपद ! जिसे साधारण नागरिक भी घृणा की दृष्टि से देखता है—कितने मूल्य का है लीला ?

(नेपथ्य से) भागो भागो ! यह राजा का अहेरी चीता पिंजरे से निकल भागा है, भागो, भागो !

[तीनो डरती हुई कुञ्ज में छिपने लगती है। चीता आता है। दूर से तीर आकर उसका शिर भेद कर निकल जाता है। धनुष लिये हुए चन्द्रगुप्त का प्रवेश]

चन्द्र०—कौन यहाँ है ? किधर से स्त्रियो का क्रन्दन सुनाई पडा था !—(देखकर)—अरे, यहाँ तो तीन सुकुमारियाँ है! भद्रे, पशु ने कुछ चोट तो नही पहुँचाई ?

लीला—साधु ! वीर ! राजकुमारी की प्राण-रक्षा के लिए तुम्हे अवश्य पुरस्कार मिलेगा !

चन्द्र०—कौन राजकुमारी, कल्याणी देवी ?

लीला—हाँ, यही न है ? भय से मुख विवर्ण हो गया है।

चन्द्र०—राजकुमारी, मौर्य्य-सेनापति का पुत्र चन्द्रगुप्त प्रणाम करता है।

कल्याणी—(स्वस्थ होकर, सलज्ज)—नमस्कार, चन्द्रगुप्त, मै कृतज्ञ हुई। तुम भी स्नातक होकर लौटे हो ?

चन्द्र०—हाँ देवि, तक्षशिला मे पाँच वर्ष रहने के कारण यहाँ के लोगो को पहचानने में विलम्ब होता है। जिन्हे किशोर छोड कर गया था, अब वे तरुण दिखाई पड़ते है। मै अपने कई बाल-सहचरो को भी पहचान न सका !

कल्याणी—परन्तु मुझे आशा थी कि तुम मुझे न भूल जाओगे।

चन्द्र०—देवि, यह अनुचर सेवा के उपयुक्त अवसर पर ही पहुँचा। चलिए, शिविका तक पहुँचा दूँ। (सब जाते है)

५

मगध मे नन्द की राजसभा

राक्षस और सभासदो के साथ नन्द

नन्द---हाँ, तब ?

राक्षस---दूत लौट आए और उन्होने कहा कि पचनद-नरेश को यह सम्वन्ध स्वीकार नही ।

नन्द---क्यो ?

राक्षस---प्राच्य देश के बौद्ध और शूद्र राजा की कन्या से वे परिणय नही कर सकते ।

नन्द---इतना गर्व !

राक्षस---यह उसका गर्व नही, यह धर्म का दम्भ है, व्यग है। मै इसका फल दूँगा। मगध-जैसे शक्तिशाली राष्ट्र का अपमान करके कोई यो ही नही वच जायगा। ब्राह्मणो का यह... .....

[**प्रतिहारी का प्रवेश**]

प्रतिहार---जय हो देव, मगध से शिक्षा के लिये गये हुए तक्षशिला के स्नातक आये है।

नन्द---लिवा लाओ ।

[**दौवारिक का प्रस्थान ; चन्द्रगुप्त के साथ कई स्नातकों का प्रवेश**]

स्नातक---राजाधिराज की जय हो !

नन्द---स्वागत। अमात्य वररुचि अभी नही आये, देखो तो ?

[**प्रतिहार का प्रस्थान और वररुचि के साथ प्रवेश**]

वर०---जय हो देव, मै स्वय आ रहा था।

नन्द---तक्षशिला से लौटे हुए स्नातको की परीक्षा लीजिये।

वर०---राजाधिराज, जिस गुरुकुल मे मै स्वय परीक्षा देकर स्नातक हुआ हूँ, उसके प्रमाण की भी पुन. परीक्षा, अपने गुरुजनो के प्रति अपमान करना है।

नन्द—किन्तु राजकोष का रुपया व्यर्थ ही स्नातको को भेजने में लगता है या इसका सदुपयोग होता है, इसका निर्णय कैसे हो ?

राक्षस—केवल सद्धर्म की शिक्षा ही मनुष्यो के लिए पर्याप्त है। और वह तो मगध मे ही मिल सकती है।

[**चाणक्य का सहसा प्रवेश ; त्रस्त दौवारिक पीछे-पीछे आता है**]

चाणक्य—परन्तु बौद्धधर्म की शिक्षा मानव-व्यवहार के लिए पूर्ण नही हो सकती, भले ही वह संघ-विहार मे रहनेवालो के लिये उपयुक्त हो।

नन्द—तुम अनाधिकार चर्चा करनेवाले कौन हो जी ?

चाणक्य—तक्षशिला से लौटा हुआ एक स्नातक ब्राह्मण।

नन्द—ब्राह्मण ! ब्राह्मण !! जिधर देखो कृत्या के समान इनकी शक्ति-ज्वाला धधक रही है।

चाणक्य—नही महाराज ! ज्वाला कहाँ ? भस्मावगुण्ठित अंगारे रह गये है !

राक्षस—तब भी इतना ताप !

चाणक्य—वह तो रहेगा ही ! जिस दिन उसका अन्त होगा, उसी दिन आर्यावर्त्त का ध्वंस होगा। यदि अमात्य ने ब्राह्मण-नाश करने का विचार किया हो तो जन्मभूमि की भलाई के लिए उसका त्याग कर दे ; क्योकि राष्ट्र का शुभ-चिन्तन केवल ब्राह्मण ही कर सकते है। एक जीव की हत्या से डरनेवाले तपस्वी बौद्ध, सिर पर मँडरानेवाली विपत्तियो से, रक्त-समुद्र की आँधियो से, आर्य्यावर्त्त की रक्षा करने मे असमर्थ प्रमाणित होगे।

नन्द—ब्राह्मण ! तुम बोलना नही जानते हो तो चुप रहना सीखो।

चाणक्य—महाराज, उसे सीखने के लिए मै तक्षशिला गया था और मगध का सिर ऊँचा करके उसी गुरुकुल मे मैने अध्यापन का कार्य भी किया है। इसलिए मेरा हृदय यह नही मान सकता कि मै मूर्ख हूँ।

नन्द—तुम चुप रहो।

चाणक्य——एक बात कह कर महाराज !

राक्षस——क्या ?

चाणक्य——यवनो की विकट वाहिनी निषध-पर्वतमाला तक पहुँच गई है। तक्षशिलाधीश की भी उसमे अभिसधि है। सम्भवतः समस्त आर्य्यावर्त्त पादाक्रान्त होगा। उत्तरापथ मे बहुत-से छोटे-छोटे गणतत्र है, वे उस सम्मिलित पारसीक यवन-बल को रोकने मे असमर्थ होगे। अकेले पर्वतेश्वर ने साहस किया है, इसलिए मगध को पर्वतेश्वर की सहायता करनी चाहिए।

कल्याणी——(**प्रवेश करके**)——पिताजी, मै पर्वतेश्वर के गर्व की परीक्षा लूँगी। मै वृषल-कन्या हूँ। उस क्षत्रिय को यह सिखा दूँगी कि राजकन्या कल्याणी किसी क्षत्राणी से कम नही। सेनापति को आज्ञा दीजिए कि आसन्न गाधार-युद्ध मे मगध की एक सेना अवश्य जाय और मै स्वय उसका संचालन करूँगी। पराजित पर्वतेश्वर को सहायता देकर उसे नीचा दिखाऊँगी।

[नन्द हँसता है]

राक्षस——राजकुमारी, राजनीति महलो मे नही रहती, इसे हम लोगो के लिए छोड देना चाहिए। उद्धत पर्वतेश्वर अपने गर्व का फल भोगे और ब्राह्मण चाणक्य ! परीक्षा देकर ही कोई साम्राज्य-नीति समझ लेने का अधिकारी नही हो जाता।

चाणक्य——सच है बौद्ध अमात्य ; परन्तु यवन आक्रमणकारी बौद्ध और ब्राह्मण का भेद न रखेगे।

नन्द——वाचाल ब्राह्मण ! तुम अभी चले जाओ, नही तो प्रतिहार तुम्हे धक्के देकर निकाल देंगे।

चाणक्य——राजाधिराज ! मै जानता हूँ कि प्रमाद मे मनुष्य कठोर सत्य का भी अनुभव नही करता, इसीलिए मैने प्रार्थना नही की——अपने अपहृत ब्राह्मस्व के लिए मैने भिक्षा नही माँगी। क्यो ? जानता था कि वह मुझे ब्राह्मण होने के कारण न मिलेगी ; परन्तु जब राष्ट्र के लिए ..

राक्षस--चुप रहो। तुम चणक के पुत्र हो न, तुम्हारे पिता भी ऐसे ही हठी थे!

नन्द०--क्या उसी विद्रोही ब्राह्मण की सन्तान? निकालो इसे अभी यहाँ से!

[प्रतिहारी आगे बढ़ता है; चद्रगुप्त सामने आकर रोकता है]

चन्द्र०--सम्राट्, मै प्रार्थना करता हूँ कि गुरुदेव का अपमान न किया जाय। मै भी उत्तरापथ से आ रहा हूँ। आर्य्य चाणक्य ने जो कुछ कहा है, वह साम्राज्य के हित की बात है। उसपर विचार किया जाय।

नन्द०--कौन? सेनापति मौर्य्य का कुमार चन्द्रगुप्त!

चन्द्र--हाँ देव, मै युद्ध-नीति सीखने के लिए ही तक्षशिला भेजा गया था। मैने अपनी आँखो गान्धार का उपप्लव देखा है, मुझे गुरुदेव के मत मे पूर्ण विश्वास है। यह आगन्तुक आपत्ति पचनद-प्रदेश तक ही न रह जायगी।

नन्द--अवोध युवक, तो क्या इसीलिए अपमानित होने पर भी मै पर्वतेश्वर की सहायता करूँ? असम्भव है। तुम राजाज्ञाओ में बाधा न देकर शिष्टता सीखो। प्रतिहारी, निकालो इस ब्राह्मण को! यह वड़ा ही कुचक्री माल्म पडता है!

चन्द्र०--राजाधिराज, ऐसा करके आप एक भारी अन्याय करेगे और मगध के शुभचिन्तको को शत्रु वनाएँगे।

राजकुमारी--पिताजी, चन्द्रगुप्त पर ही दया कीजिए! एक वात उसकी भी मान लीजिए।

नन्द--चुप रहो, ऐसे उद्दण्ड को मै कभी नही क्षमा करता और सुनो चन्द्रगुप्त, तुम भी यदि इच्छा हो तो इसी ब्राह्मण के साथ जा सकते हो, अब कभी मगध मे मुँह न दिखाना।

[प्रतिहारी दोनो को निकालना चाहता है, चाणक्य रुक कर कहता है]

सावधान नन्द! तुम्हारी धर्मान्धता से प्रेरित राजनीति आँधी की तरह चलेगी, उसमे नन्द-वंश समूल उखड़ेगा। नियति-सुन्दरी के भावो

में बल पड़ने लगा है। समय आ गया है कि शूद्र राजसिहासन से हटाये जायँ और सच्चे क्षत्रिय मूर्धाभिषिक्त हो।

नन्द—यह समझकर कि ब्राह्मण अवध्य है, तू मुझे भय दिखलाता है! प्रतिहारी, इसकी शिखा पकड कर उसे बाहर करो!

[प्रतिहारी उसकी शिखा पकड़कर घसीटता है, वह निश्शंक और दृढ़ता से कहता है]

खीच ले ब्राह्मण की शिखा! शूद्र के अन्न से पले हुए कुत्ते! खीच ले! परन्तु यह शिखा नन्दकुल की काल-सर्पिणी है, वह तब तक न बन्धन मे होगी, जब तक नन्द-कुल नि शेष न होगा।

नन्द—इसे बन्दी करो।

[चाणक्य बन्दी किया जाता है]

६

सिन्धु-तट--अलका और मालविका

मालविका--राजकुमारी ! मै देख आई, उद्भाड में सिन्धु पर सेतु बन रहा है। युवराज स्वयं उसका निरीक्षण करते है और मैंने उक्त सेतु का एक मानचित्र भी प्रस्तुत किया था। यह कुछ अधूरा-सा रह गया है, पर इसके देखने से कुछ आभास मिल जायगा।

अलका--सखी ! बडा दु:ख होता है, जब मै यह स्मरण करती हूँ कि स्वय महाराज का इसमें हाथ है। देखूँ तेरा मानचित्र !

[मालविका मानचित्र देती है, अलका उसे देखती है ; एक यवन सैनिक का प्रवेश--वह मानचित्र अलका से लेना चाहता है]

अलका--दूर हो दुर्विनीत दस्यु ! --(मानचित्र अपने कंचुक में छिपा लेती है।)

यवन--यह गुप्तचर है, मै इसे पहचानता हूँ। परन्तु सुन्दरी ! तुम कौन हो ; जो इसकी सहायता कर रही हो, अच्छा हो कि मुझे मानचित्र मिल जाय, और मै इसे सप्रमाण वन्दी बनाकर महाराज के सामने ले जाऊँ।

अलका--यह असम्भव है। पहले तुम्हे बताना होगा कि तुम यहाँ किस अधिकार से यह अत्याचार किया चाहते हो ?

यवन--मै ? मै देवपुत्र विजेता अलक्षेन्द्र का नियुक्त अनुचर हूँ और तक्षशिला की मित्रता का साक्षी हूँ। यह अधिकार मुझे गाधार-नरेश ने दिया है।

अलका--अह ! यवन, गाधार-नरेश ने तुम्हे यह अधिकार कभी नही दिया होगा कि तुम आर्य-ललनाओ के साथ धृष्टता का व्यवहार करो।

यवन--करना ही पड़ेगा, मुझे मानचित्र लेना ही होगा।

अलका--कदापि नही।

यवन—क्या यह वही मानचित्र नही है, जिसे इस स्त्री ने उद्भाण्ड में बनाना चाहा था।

अलका—परन्तु यह तुम्हे मिल नही सकता। यदि तुम सीधे यहाँ से न टलोगे तो शान्ति-रक्षको को बुलाऊँगी।

यवन—तब तो मेरा उपकार होगा, क्योकि इस अँगूठी को देखकर मेरी ही सहायता करेंगे—(**अंगूठी दिखाता है**)

अलका—(**देखकर सिर पकड़ लेती है**)—ओह !

यवन—(**हंसता हुआ**)—अब ठीक पथ पर आ गई होगी बुद्धि। लाओ, मानचित्र मुझे दे दो।

[**अलका निस्सहाय इधर-उधर देखती है; सिंहरण का प्रवेश**]

सिंहरण—(**चौंककर**)—है.....कौन....राजकुमारी ! और यह यवन !

अलका—महावीर ! स्त्री की मर्य्यादा को न समझने वाले इस यवन को तुम समझा दो कि यह चला जाय।

सिंहरण—यवन, क्या तुम्हारे देश की सभ्यता तुम्हे स्त्रियो का सम्मान करना नही सिखाती ? क्या सचमुच तुम बर्बर हो ?

यवन—मेरी उस सभ्यता ही ने मुझे रोक लिया है, नही तो मेरा यह कर्तव्य था कि मै उस मानचित्र को किसी भी पुरुष के हाथ में होने से उसे जैसे बनता, ले ही लेता।

सिंहरण—तुम बडे प्रगल्भ हो यवन ! क्या तुम्हे भय नही कि तुम एक दूसरे राज्य में ऐसा आचरण करके अपनी मृत्यु बुला रहे हो ?

यवन—उसे आमन्त्रण देने के लिए ही उतनी दूर से आया हूँ।

सिंहरण—राजकुमारी ! यह मानचित्र मुझे देकर आप निरापद हो जायँ, फिर मै देख लूँगा।

अलका—(**मानचित्र देती हुई**)—तुम्हारे ही लिए तो यह मँगाया गया था।

सिंहरण——(उसे रखते हुए)—ठीक है, मैं रुका भी इसीलिए था।—(यवन से)—हाँ जी, कहो, अब तुम्हारी क्या इच्छा है ?

यवन—(खड्ग निकालकर)—मानचित्र मुझे दे दो या प्राण देना होगा।

सिंहरण—उसके अधिकारी का निर्वाचन खड्ग करेगा। तो फिर सावधान हो जाओ। (तलवार खींचता है)

[यवन के साथ युद्ध—सिंहरण घायल होता है; परन्तु यवन को उसके भीषण प्रत्याक्रमण से भय होता है, वह भाग निकलता है]

अलका—वीर ! यद्यपि तुम्हे विश्राम की आवश्यकता है, परन्तु अवस्था बड़ी भयानक है। वह जाकर कुछ उत्पात मचावेगा। पिताजी पूर्णरूप से यवनो के हाथ मे आत्म-समर्पण कर चुके है।

सिंहरण—(हंसता और रक्त पोछता हुआ)—मेरा काम हो गया राजकुमारी ! मेरी नौका प्रस्तुत है, मै जाता हूँ। परन्तु बड़ा अनर्थ हुआ चाहता है। क्या गाधार-नरेश किसी तरह न मानेगे ?

अलका—कदापि नही। पर्वतेश्वर से उनका बद्धमूल बैर है।

सिंहरण—अच्छा देखा जायगा, जो कुछ होगा। देखिए, मेरी नौका आ रही है, अब विदा माँगता हूँ।

[सिन्धु में नौका आती है, घायल सिंहरण उसपर बैठता है, सिंहरण और अलका दोनों एक-दूसरे को देखते है]

अलका—मालविका भी तुम्हारे साथ जायगी—तुम जाने योग्य इस समय नही हो।

सिंहरण—जैसी आज्ञा। बहुत शीघ्र फिर दर्शन करूँगा। जन्मभूमि के लिए ही यह जीवन है, फिर जब आप-सी सुकुमारियाँ इसकी सेवा में कटिबद्ध है, तब मै पीछे कब रहूँगा। अच्छा, नमस्कार।

[मालविका नाव में बैठती है। अलका सतृष्ण नयनो से देखती हुई नमस्कार करती है। नाव चली जाती है]

[**चार सैनिकों के साथ यवन का प्रवेश**]

यवन—निकल गया—मेरा अहेर ! यह सब प्रपच इसी रमणी का है। इसको वन्दी बनाओ।

[**सैनिक अलका को देखकर सिर झुकाते हैं**]

यवन—वन्दी करो सैनिक !

सैनिक—मैं नही कर सकता।

यवन—क्यो, गाधार-नरेश ने तुम्हे क्या आज्ञा दी है ?

सैनिक—यही कि, आप जिसे कहे, उसे हम लोग वन्दी करके महाराज के पास ले चले।

यवन—फिर विलम्ब क्यो ?

[**अलका संकेत से वर्जित करती है**]

सैनिक—हम लोगो की इच्छा।

यवन—तुम राजविद्रोही हो ?

सैनिक—कदापि नही, पर यह काम हम लोगो से न हो सकेगा।

यवन—सावधान ! तुमको इस आज्ञा-भग का फल भोगना पड़ेगा। मै स्वय वन्दी बनाता हूँ।

[**अलका की ओर बढ़ता है, सैनिक तलवार खीच लेते हैं**]

यवन—(**ठहर कर**)—यह क्या ?

सैनिक—डरते हो क्या ? कायर ! स्त्रियो पर वीरता दिखाने मे बड़े प्रबल हो और एक युवक के सामने से भाग निकले !

यवन—तो क्या, तुम राजकीय आज्ञा का स्वय न पालन करोगे और न करने दोगे ?

सैनिक—यदि साहस हो मरने का तो आगे बढो।

अलका—(**सैनिको से**)—ठहरो, विवाद करने का समय नही है। —(**यवन से**)—कहो, तुम्हारा अभिप्राय क्या है ?

यवन—मै तुम्हे वन्दी करना चाहता हूँ।

अलका—कहाँ ले चलोगे ?

यवन—गांधार-नरेश के पास ।

अलका—मै चलती हूँ, चलो ।

[आगे अलका, पीछे यवन और सैनिक जाते हैं]

७

मगध का वन्दीगृह

चाणक्य—समीर की गति भी अवरुद्ध है, शरीर का फिर क्या कहना ? परन्तु मन म इतने संकल्प और विकल्प ? एक बार निकलने पाता तो दिखा देता कि इन दुर्बल हाथों मे साम्राज्य उलटने की शक्ति है और ब्राह्मण के कोमल हृदय में कर्तव्य के लिए प्रलय की आँधी चला देने की भी कठोरता है। जकड़ी हुई लौह शृंखले! एक बार तू फूलो की माला बन जा और मै मदोन्मत्त विलासी के समान तेरी सुन्दरता को भग कर दूँ। क्या रोने लगूँ ? इस निष्ठुर यंत्रणा की कठोरता से बिलबिलाकर दया की भिक्षा माँगूँ ? माँगूँ कि मुझे भोजन के लिए एक मुट्ठी चने जो देते हो, न दो, एक बार स्वतंत्र कर दो! नही, चाणक्य! ऐसा न करना। नही तो तू भी साधारण-सी ठोकर खाकर चूर-चूर हो जाने वाली एक बामी हो जायगा। तब मै आज से प्रण करता हूँ कि दया किसी से न माँगूँगा और अधिकार तथा अवसर मिलने पर किसी पर न करूँगा (**ऊपर देखकर**)—क्या कभी नही ? हाँ, हाँ, कभी किसी पर नही। मै प्रलय के समान अबाधगति और कर्त्तव्य मे इन्द्र के वज्र के समान भयानक बनूँगा।

[**किवाड़ खुलता है, वररुचि और राक्षस का प्रवेश**]

राक्षस—स्नातक! अच्छे तो हो ?

चाणक्य—बुरे कब थे बौद्ध अमात्य!

राक्षस—आज हम लोग एक काम से आए है। आशा है कि तुम अपनी हठवादिता से मेरा और अपना दोनो का अपकार न करोगे।

वररुचि—हाँ चाणक्य! अमात्य का कहना मान लो।

चाणक्य—भिक्षोपजीवी ब्राह्मण! क्या बौद्धो का सग करते-करते तुम्हे अपनी गरिमा का सम्पूर्ण विस्मरण हो गया ? चाटुकारो के सामने

हाँ-मे-हाँ मिलाकर, जीवन की कठिनाइयो से वचकर, मुझे भी कुत्ते का पाठ पढाना चाहते हो ! भूलो मत, यदि राक्षस देवता हो जाय तो उसका विरोध करने के लिए मुझे ब्राह्मण से दैत्य बनना पडेगा।

वररुचि—ब्राह्मण हो भाई ! त्याग और क्षमा के प्रमाण—तपोनिधि ब्राह्मण हो । इतना—

चाणक्य—त्याग और क्षमा, तप और विद्या, तेज और सम्मान के लिए है—लोहे और सोने के सामने सिर झुकाने के लिए हम लोग ब्राह्मण नही बने है। हमारी दी हुई विभूति से हमी को अपमानित किया जाय, ऐसा नही हो सकता। कात्यायन ! अब केवल पाणिनि से काम न चलेगा। अर्थशास्त्र और दण्ड-नीति की आवश्यकता है।

वररुचि—मै वार्तिक लिख रहा हूँ चाणक्य ! उसी के लिए तुम्हे सहकारी बनाना चाहता हूँ। तुम इस बन्दीगृह से निकलो।

चाणक्य—मै लेखक नही हूँ कात्यायन ! शास्त्र-प्रणेता हूँ, व्यवस्थापक हूँ।

राक्षस—अच्छा मै आज्ञा देता हूँ कि तुम विवाद न बढ़ाकर स्पष्ट उत्तर दो। तुम तक्षशिला मे मगध के गुप्त प्रणिधि बनकर जाना चाहते हो या मृत्यु चाहते हो ? तुम्ही पर विश्वास करके क्यो भेजना चाहता हूँ, यह तुम्हारी स्वीकृति मिलने पर बताऊँगा।

चाणक्य—जाना तो चाहता हूँ तक्षशिला, पर तुम्हारी सेवा के लिए नही। और सुनो, पर्वतेश्वर का नाश करने के लिए तो कदापि नही।

राक्षस—यथेष्ठ है, अधिक कहने की आवश्यकता नही।

वररुचि—विष्णुगुप्त ! मेरा वार्तिक अधूरा रह जायगा। मान जाओ। तुम को पाणिनि के कुछ प्रयोगो का पता भी लगाना होगा जो उस शालातुरीय वैयाकरण ने लिखे है ! फिर से एक बार तक्षशिला जाने पर ही उनका—

चाणक्य—मेरे पास पाणिनि मे सिर खपाने का समय नही। भाषा ठीक करने से पहले मै मनुष्यो को ठीक करना चाहता हूँ, समझे !

वररुचि—जिसने '**श्वयुवमघोनामतद्धिते**' सूत्र लिखा है, वह केवल वैयाकरण ही नही, दार्शनिक भी था। उसकी अवहेलना !

[**चाणक्य**—यह मेरी समझ मे नही आता, मै कुत्ता, साधारण युवक और इन्द्र को कभी एक सूत्र मे नही बाँध सकता। कुत्ता कुत्ता ही रहेगा, इन्द्र, इन्द्र ! सुनो वररुचि ! मै कुत्ते को कुत्ता ही बनाना चाहता हूँ। नीचो के हाथ मे इन्द्र का अधिकार चले जाने से जो सुख होता है, उसे मै भोग रहा हूँ]। तुम जाओ !

वररुचि—क्या मुक्ति भी नही चाहते ।

चाणक्य—तुम लोगो के हाथ से वह भी नही ।

राक्षस—अच्छा तो फिर तुम्हे अन्धकूप में जाना होगा ।

[**चन्द्रगुप्त का रक्तपूर्ण खड्ग लिए सहसा प्रवेश—चाणक्य का बन्धन काटता है, राक्षस प्रहरियों को बुलाना चाहता है**]

चन्द्रगुप्त—चुप रहो अमात्य ! शवो मे बोलने की शक्ति नही, तुम्हारे प्रहरी जीवित नही रहे ।

चाणक्य—मेरे शिष्य ! वत्स चन्द्रगुप्त !

चन्द्रगुप्त—चलिए गुरुदेव !—(**खड्ग उठाकर राक्षस से**)—यदि तुमने कुछ भी कोलाहल किया तो ... (**राक्षस बैठ जाता है ; वररुचि गिर पड़ता है। चन्द्रगुप्त चाणक्य को लिए निकलता हुआ किवाड़ बन्द कर देता है।**)

गांधार-नरेश का प्रकोष्ठ

[**चिन्तायुक्त प्रवेश करते हुए राजा**]

राजा—बूढा हो चला, परन्तु मन बूढा न हुआ। बहुत दिनो तक तृष्णा को तृप्त करता रहा, पर तृप्त नही होती। आम्भीक तो अभी युवक है, उसके मन मे महत्त्वाकाक्षा का होना अनिवार्य है। उसका पथ कुटिल है, गधर्व-नगर की-सी सफलता उसे अपने पीछे दौडा रही है।—(**विचार कर**)—हाँ, ठीक तो नही है ; पर उन्नति के शिखर पर नाक के सीधे चढने में बड़ी कठिनता है—(**ठहरकर**)—रोक दूँ। अब से भी अच्छा है, जब वे घुस आवेंगे तब तो गाधार को भी वही कष्ट भोगना पड़ेगा, जो हम दूसरों को देना चाहते है।

[**अलका के साथ यवन और रक्षकों का प्रवेश**]

राजा—बेटी ! अलका !

अलका—हाँ महाराज, अलका ।

राजा—नही, कहो—हाँ पिताजी। अलका, कब तक तुम्हे—सिखाता रहूँ !

अलका—नही महाराज !

राजा—फिर महाराज ! पागल लडकी। कह, पिताजी !

अलका—वह कैसे महाराज ! न्यायाधिकरण पिता-सम्बोधन मे पक्षपाती हो जायगा।

राजा—यह क्या ?

यवन—महाराज ! मुझे नही मालूम कि ये राजकुमारी है। अन्यथा, मै इन्हे बन्दी न बनाता।

राजा—सिल्यूकस ! तुम्हारा मुख कधे पर से बोल रहा है। यवन ! यह मेरी राजकुमारी अलका है। आ बेटी—(**उसकी ओर हाथ बढ़ाता है, वह अलग हट जाती है।**)

अलका—नही महाराज ! पहले न्याय कीजिये ।

यवन—उद्भाण्ड पर बँधनेवाले पुल का मानचित्र इन्होने एक स्त्री से बनवाया है, और जब मैं उसे माँगने लगा, तो एक युवक को देकर इन्होने उसे हटा दिया । मैंने यह समाचार आप तक निवेदन किया और आज्ञा मिली कि वे लोग वन्दी किये जायँ ; परन्तु वह युवक निकल गया ।

राजा—क्यो बेटी ! मानचित्र देखने की इच्छा हुई थी ?—(**सिल्यूकस से**)—तो क्या चिन्ता है, जाने दो । मानचित्र तुम्हारा पुल बँधना रोक नही सकता ।

अलका—नही महाराज ! मानचित्र एक विशेष कार्य से बनवाया गया है—वह गाधार की लगी हुई कालिख छुडाने के लिए......।

राजा—सो तो मै जानता हूँ बेटी ! तुम क्या कोई नासमझ हो ।

[**वेग से आम्भीक का प्रवेश**]

आम्भीक—नही पिताजी, आपके राज्य मे एक भयानक षड्यन्त्र चल रहा है और तक्षशिला का गुरुकुल उसका केन्द्र है। अलका उस रहस्यपूर्ण कुचक्र की कुजी है ।

राजा—क्यो अलका ! यह बात सही है ?

अलका—सत्य है । महाराज ! जिस उन्नति की आशा मे आम्भीक ने यह नीच कर्म किया है, उसका पहला फल यह है कि आज मैं वन्दिनी हूँ, सम्भव है कल आप होगे ! और परसो गाधार की जनता बेगार करेगी । उनका मुखिया होगा आपका वश-उज्ज्वलकारी आम्भीक !

यवन—सन्धि के अनुसार देवपुत्र का साम्राज्य और गाधार मित्र-राज्य है, व्यर्थ की बात है ।

आम्भीक—सिल्यूकस ! तुम विश्राम करो । हम इसको समझकर तुमसे मिलते है ।

[**यवन का प्रस्थान, रक्षको का दूसरी ओर जाना**]

राजा—परन्तु आम्भीक ! राजकुमारी वन्दिनी बनाई जाय, वह भी

मेरे ही सामने ! उसके लिए एक यवन दण्ड की व्यवस्था करे, यही तो तुम्हारे उद्योगो का फल है !

अलका—महाराज ! मुझे दण्ड दीजिये, कारागार मे भेजिये, नही तो मै मुक्त होने पर भी यही करूँगी। कुलपुत्रो के रक्त से आर्यावर्त्त की भूमि सिंचेगी ! दानवी बनकर जननी जन्म-भूमि अपनी सन्तान को खायगी। महाराज ! आर्यावर्त्त के सब बच्चे आम्भीक-जैसे नही होगे। वे इसकी मान-प्रतिष्ठा और रक्षा के लिए तिल-तिल कट जायँगे। स्मरण रहे, यवनो की विजयवाहिनी के आक्रमण को प्रत्यावर्त्तन बनाने वाले यही भारत-सन्तान होगे। तब बचे हुए क्षतांग वीर, गांधार को—भारत के द्वार-रक्षक को—विश्वासघाती के नाम से पुकारेगे और उसमे नाम लिया जायगा मेरे पिता का ! आह ! उसे सुनने के लिए मुझे जीवित न छोड़िये, दण्ड दीजिये—मृत्युदण्ड !

आम्भीक—इसे उन सबो ने खूब बहकाया है। राजनीति के खेल यह क्या जाने ? पिताजी, पर्वतेश्वर—उद्दड पर्वतेश्वर ने जो मेरा अपमान किया है, उसका प्रतिशोध !

राजा—हाँ बेटी ! उसने स्पष्ट कह दिया है कि, कायर आम्भीक से मै अपने लोक-विश्रुत कुल की कुमारी का व्याह न करूँगा। और भी, उसने वितस्ता के इस पार अपनी एक चौकी बना दी है, जो प्राचीन सन्धियो के विरुद्ध है।

अलका—तब महाराज ! उस प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए जो लड़कर मर नही गया, वह कायर नही तो और क्या है ?

आम्भीक—चुप रहो अलका !

राजा—तुम दोनो ही ठीक बाते कह रहे हो, फिर मै क्या करूँ ?

अलका—तो महाराज ! मुझे दण्ड दीजिए, क्योकि राज्य का उत्तराधिकारी आम्भीक ही उसके शुभाशुभ की कसौटी है, मै भ्रम मे हूँ।

राजा—मै यह कैसे कहूँ ?

अलका—तब मुझे आज्ञा दीजिए, मै राजमन्दिर छोडकर चली जाऊँ।

राजा—कहाँ जाओगी और क्या करोगी अलका ?

अलका—गांधार मे विद्रोह मचाऊँगी !

राजा—नही अलका, तुम ऐसा नही करोगी।

अलका—करूँगी महाराज, अवश्य करूँगी।

राजा—फिर मै पागल हो जाऊँगा ! मुझे तो विश्वास नही होता।

आम्भीक—और तव अलका, मै अपने हाथो से तुम्हारी हत्या करूँगा।

राजा—नही आम्भीक ! तुम चुप रहो। सावधान ! अलका के शरीर पर जो हाथ उठाना चाहता हो, उसे मै द्वन्द्व-युद्ध के लिए ललकारता हूँ।

[आम्भीक सिर नीचा कर लेता है]

अलका—तो मै जाती हूँ पिता जी !

राजा—(अन्यमनस्क भाव से सोचता हुआ)—जाओ।

[अलका चली जाती है]

राजा—आम्भीक !

आम्भीक—पिता जी !

राजा—लौट आओ।

आम्भीक—इस अवस्था मे तो लौट आता, परन्तु वे यवन-सैनिक छाती पर खडे है। पुल बँध चुका है। नही तो पहले गाधार का ही नाश होगा।

राजा—तव ?—(नि श्वास लेकर)—जो होना हो सो हो। पर एक बात आम्भीक ! आज से मुझसे कुछ न कहना। जो उचित समझो करो। मै अलका को खोजने जाता हूँ। गाधार जाने और तुम जानो।

[वेग से प्रस्थान]

९

पर्वतेश्वर की राजसभा

पर्वतेश्वर—आर्य्य चाणक्य ! आपकी बाते ठीक-ठीक नही समझ मे आती।

चाणक्य—कैसे आवेगी, मेरे पास केवल बात ही है न, अभी कुछ कर दिखाने में असमर्थ हूँ।

पर्वतेश्वर—परन्तु इस समय मुझे यवनो से युद्ध करना है, मै अपना एक भी सैनिक मगध नही भेज सकता।

चाणक्य—निरुपाय हूँ। लौट जाऊँगा। नही तो मगध की लक्षाधिक सेना आगामी यवन-युद्ध में पौरव पर्वतेश्वर की पताके के नीचे युद्ध करती। वही मगध, जिसने सहायता मॉगने पर पञ्चनद का तिरस्कार किया था।

पर्वतेश्वर—हॉ, तो इस मगध-विद्रोह का केन्द्र कौन होगा ? नन्द के विरुद्ध कौन खडा होता है ?

चाणक्य—मौर्य्य-सेनानी का पुत्र चन्द्रगुप्त ; जो मेरे साथ यहाँ आया है।

पर्वतेश्वर—पिप्पली-कानन के मौर्य्य भी तो वैसे ही वृषल है; उनको राज्यसिहासन दीजियेगा ?

चाणक्य—आर्य्य क्रियाओ का लोप हो जाने से इन लोगो को वृषलत्व मिला ; वस्तुत. ये क्षत्रिय है। बौद्धों के प्रभाव में आने से इनके श्रौत-संस्कार छूट गये है अवश्य, परन्तु इनके क्षत्रिय होने मे कोई सन्देह नही। और, महाराज ! धर्म्म के नियामक ब्राह्मण है, मुझे पात्र देखकर उसका संस्कार करने का अधिकार है। ब्राह्मणत्व एक सार्वभौम शाश्वत बुद्धि-वैभव है। वह अपनी रक्षा के लिए, पुष्टि के लिए और सेवा के लिए इतर वर्णों का संघटन कर लेगा। राजन्य-संस्कृति से पूर्ण मनुष्य को मूर्द्धाभिषिक्त बनाने में दोष ही क्या है ?

पर्वतेश्वर—(हँसकर)—यह आपका सुविचार नही है ब्राह्मण ।

चाणक्य—वशिष्ठ का ब्राह्मणत्व जब पीडित हुआ था, तब पल्लव, दरद, काम्बोज आदि क्षत्रिय बने थे। राजन, यह कोई नयी बात नही है।

पर्वतेश्वर—वह समर्थ ऋषियों की बात है ।

चाणक्य—भविष्य इसका विचार करता है कि ऋषि किन्हे कहते है। क्षत्रियाभिमानी पौरव ! तुम इसके निर्णायक नही हो सकते ।

पर्वतेश्वर—शूद्र-शासित राष्ट्र मे रहनेवाले ब्राह्मण के मुख से यह बात शोभा नही देती ।

चाणक्य—तभी तो ब्राह्मण मगध को क्षत्रिय-शासन में ले आना चाहता है। पौरव ! जिसके लिए कहा गया है, कि क्षत्रिय के शस्त्र धारण करन पर आर्तवाणी नही सुनाई पडनी चाहिये, मौर्य्य चन्द्र-गुप्त वैसा ही क्षत्रिय प्रमाणित होगा ।

पर्वतेश्वर—कल्पना है ।

चाणक्य—प्रत्यक्ष होगी। और स्मरण रखना, आसन्न यवन-युद्ध में, शौर्य्य गर्व से तुम पराभूत होगे। यवनो के द्वारा समग्र आर्य्यावर्त्त पादा-क्रान्त होगा । उस समय तुम मुझे स्मरण करोगे ।

पर्वतेश्वर—केवल अभिशाप-अस्त्र लेकर ही तो ब्राह्मण लडते है। मै इससे नहीं डरता । परन्तु डरानेवाले ब्राह्मण ! तुम मेरी सीमा के बाहर हो जाओ !

चाणक्य—(ऊपर देखकर)—रे पददलित ब्राह्मणत्व ! देख, शूद्र ने निगड-बद्ध किया, क्षत्रिय निर्वासित करता है, तब जल—एक बार अपनी ज्वाला से जल ! उसकी चिनगारी से तेरे पोषक वैश्य, सेवक शूद्र और रक्षक क्षत्रिय उत्पन्न हो । जाता हूँ पौरव !

[प्रस्थान]

कानन-पथ में अलका

अलका—चली जा रही हूँ । अनन्त पथ है, कही पान्थशाला नही और न पहुँचने का निर्दिष्ट स्थान है । शैल पर से गिरा दी गई स्रोतस्विनी के सदृश अविराम भ्रमण, ठोकरे और तिरस्कार! कानन मे कहाँ चली जा रही हूँ ? —(सामने देखकर)—अरे ! यवन !!

(शिकारी के वेश में सिल्यूकस का प्रवेश)

सिल्यूकस—तुम कहाँ, सुन्दरी राजकुमारी !

अलका—मेरा देश है, मेरे पहाड है, मेरी नदियाँ है और मेरे जगल है। इस भूमि के एक-एक परमाणु मेरे है और मेरे शरीर के एक-एक क्षुद्र अश उन्ही परमाणुओ के बने है ! फिर मै और कहाँ जाऊँगी यवन ?

सिल्यूकस—यहाँ तो तुम अकेली हो सुन्दरी !

अलका—सो तो ठीक है। —(दूसरी ओर देखकर सहसा)—परतु देखो वह सिह आ रहा है !

(सिल्यूकस उधर देखता है, अलका दूसरी ओर निकल जाती है)

सिल्यूकस—निकल गई ! —(दूसरी ओर जाता है)

(चाणक्य और चन्द्रगुप्त का प्रवेश)

चाणक्य—वत्स, तुम बहुत थक गए होगे ।

चन्द्रगुप्त—आर्य्य ! नसो ने अपने बधन ढीले कर दिये है, शरीर अवसन्न हो रहा है, प्यास भी लगी है।

चाणक्य—और कुछ दूर न चल सकोगे ?

चन्द्रगुप्त—जैसी आज्ञा हो ।

चाणक्य—पास ही सिन्धु लहराता होगा, उसके तट पर ही विश्राम करना ठीक होगा ।

[चन्द्रगुप्त चलने के लिए पैर बढ़ाता है फिर बैठ जाता है]

चाणक्य—(उसे पकड़कर)—सावधान, चन्द्रगुप्त !

चन्द्रगुप्त—आर्य्य ! प्यास से कंठ सूख रहा है, चक्कर आ रहा है !

चाणक्य—तुम विश्राम करो, मैं अभी जल लेकर आता हूँ।

[प्रस्थान]

[चन्द्रगुप्त पसीने से तर लेट जाता है। एक व्याघ्र समीप आता दिखाई पड़ता है। सिल्यूकस प्रवेश करके धनुष सँभालकर तीर चलाता है! व्याघ्र मरता है। सिल्यूकस की चन्द्रगुप्त को चैतन्य करने की चेष्टा। चाणक्य का जल लिए आना]

सिल्यूकस—थोडा जल, इस सत्त्वपूर्ण पथिक की रक्षा करने के लिए थोड़ा जल चाहिए।

चाणक्य—(जल के छींटे देकर)—आप कौन हैं ?

[चन्द्रगुप्त स्वस्थ होता है]

सिल्यूकस—यवन सेनापति ! तुम कौन हो ?

चाणक्य—एक ब्राह्मण।

सिल्यूकस—यह तो कोई बडा श्रीमान पुरुष है। ब्राह्मण ! तुम इसके साथी हो ?

चाणक्य—हाँ, मैं इस राजकुमार का गुरु हूँ, शिक्षक हूँ।

सिल्यूकस—कहाँ निवास है ?

चाणक्य—यह चन्द्रगुप्त मगध का एक निर्वासित राजकुमार है।

सिल्यूकस—(कुछ विचारता है)—अच्छा, अभी तो मेरे शिविर में चलो, विश्राम करके फिर कही जाना।

चन्द्रगुप्त—यह सिंह कैसे मरा ? ओह, प्यास से मैं हतचेत हो गया था—आपने मेरे प्राणो की रक्षा की, मैं कृतज्ञ हूँ। आज्ञा दीजिए, हम लोग फिर उपस्थित होगे, निश्चय जानिए।

सिल्यूकस—जब तुम अचेत पडे थे तब यह तुम्हारे पास बैठा था। मैंने विपद समझकर इसे मार डाला। मैं यवन सेनापति हूँ।

चन्द्रगुप्त—धन्यवाद ! भारतीय कृतघ्न नही होते । सेनापति ! मै आप का अनुगृहीत हूँ, अवश्य आप के पास आऊँगा।

[तीनों जाते है, अलका का प्रवेश]

अलका—आर्य चाणक्य और चन्द्रगुप्त —ये भी यवनो के साथी ! जब आँधी और करका-वृष्टि, अवर्षण और दावाग्नि का प्रकोप हो, तब देश की हरी-भरी खेती का रक्षक कौन है ? शून्य व्योम प्रश्न को बिना उत्तर दिए लौटा देता है । ऐसे लोग भी आक्रमणकारियो के चगुल मे फँस रहे हो, तब रक्षा की क्या आशा ! झेलम के पार सेना उतरना चाहती है । उन्मत्त पर्वतेश्वर अपने विचारो में मग्न है। गांधार छोड़कर चलूँ, नही, एक बार महात्मा दाण्डचायन को नमस्कार कर लूँ, उस शान्ति-सन्देश से कुछ प्रसाद लेकर तब अन्यत्र जाऊँगी ।

[जाती है]

११

सिन्धु-तट पर दाण्ड्यायन का आश्रम

दाण्ड्यायन—पवन एक क्षण विश्राम नही लेता, सिन्धु की जल-धारा बही जा रही है, बादलो के नीचे पक्षियो का झुण्ड उडा जा रहा है, प्रत्येक परमाणु न जाने किस आकर्षण मे खिचे चले जा रहे है। जैसे काल अनेक रूप मे चल रहा है—यही तो...

[**एनिसाक्रीटीज का प्रवेश**]

एनि०—महात्मन्!

दाण्ड्यायन—चुप रहो, सब चले जा रहे है, तुम भी चले जाओ। अवकाश नही, अवसर नही।

एनि०—आप से कुछ.....

दाडण्यायन—मुझसे कुछ मत कहो। कहो तो अपने आप ही कहो, जिसे आवश्यकता होगी सुन लेगा। देखते हो, कोई किसी की सुनता है? मै कहता हूँ—सिन्धु के एक विन्दु! धारा मे न वहकर मेरी एक बात सुनने के लिए ठहर जा।—वह सुनता है? ठहरता है? कदापि नही।

एनि०—परन्तु देवपुत्र ने......

दाण्डचायन—देवपुत्र?

एनि०—देवपुत्र जगद्विजेता सिकन्दर ने आपका स्मरण किया है। आपका यश सुनकर आपसे कुछ उपदेश ग्रहण करने की उनकी बलवती इच्छा है।

दाण्डचायन—(हँसकर)—भूमा का सुख और उसकी महत्ता का जिसको आभास-मात्र हो जाता है, उसको ये नश्वर चमकीले प्रदर्शन नही अभिभूत कर सकते, दूत! वह किसी बलवान की इच्छा का क्रीडा-कन्दुक नही वन सकता। तुम्हारा राजा अभी झेलम भी नही पार कर सका, फिर भी जगद्विजेता की उपाधि लेकर जगत् को वञ्चित करता है। मै लोभ से, सम्मान से, या भय से किसी के पास नही जा सकता।

एनि०—महात्मन् ! ऐसा क्यों ? यदि न जाने पर देवपुत्र दण्ड दें ?

दाण्डायायन—मेरी आवश्यकताएँ परमात्मा की विभूति प्रकृति पूरी करती है। उसके रहते दूसरों का शासन कैसा ?[समस्त आलोक, चैतन्य और प्राणशक्ति, प्रभु की दी हुई है। मृत्यु के द्वारा वही इसको लौटा लेता है। जिस वस्तु को मनुष्य दे नहीं सकता, उसे ले लेने की स्पर्धा से बढ़कर दूसरा दम्भ नहीं। मैं फल-मूल खाकर अंजलि से जलपान कर, तृण-शय्या पर आँख बन्द किए सो रहता हूँ। न मुझसे किसी को डर है और न मुझको डरने का कारण है। तुम ही यदि हठात् मुझे ले जाना चाहो तो केवल मेरे शरीर को ले जा सकते हो, मेरी स्वतंत्र आत्मा पर तुम्हारे देवपुत्र का भी अधिकार नहीं हो सकता।]

एनि०—बड़े निर्भीक हो ब्राह्मण ! जाता हूँ, यही कह दूँगा।—(प्रस्थान)

[एक ओर से अलका, दूसरी ओर से चाणक्य और चन्द्रगुप्त का प्रवेश। सब वन्दना करके सविनय बैठते हैं]

अलका—देव ! मैं गांधार छोड़कर जाती हूँ।

दाण्डायायन—क्यों अलके, तुम गांधार की लक्ष्मी हो, ऐसा क्यों ?

अलका—ऋषे ! यवनों के हाथ स्वाधीनता बेचकर उनके दान से जीने की शक्ति मुझमें नहीं।

दाण्ड्यायन—तुम उत्तरापथ की लक्ष्मी हो, तुम अपना प्राण बचाकर कहाँ जाओगी ?—(**कुछ विचारकर**)—अच्छा जाओ देवि ! तुम्हारी आवश्यकता है। मंगलमय विभु अनेक अमंगलों में कौन-कौन कल्याण छिपाए रहता है, हम सब उसे नहीं समझ सकते। परन्तु जब तुम्हारी इच्छा हो, निस्संकोच चली आना।

अलका—देव, हृदय में सन्देह है !

दाण्ड्यायन—क्या अलका ?

अलका—ये दोनो महाशय, जो आपके सम्मुख बैठे है—जिनपर पहले मेरा पूर्ण विश्वास था , वे ही अब यवनो के अनुगत क्यो होना चाहते है ?

[दाण्ड्यायन चाणक्य की ओर देखता है और चाणक्य कुछ विचारने लगता है]

चन्द्रगुप्त—देवि ! कृतज्ञता का वन्धन अमोघ है ।

चाणक्य—राजकुमारी ! उस परिस्थित पर आपने विचार नही किया है, आपकी शका निर्मूल है ।

दाण्ड्यायन—सन्देह न करो अलका ! कल्याणकृत को पूर्ण विश्वासी होना पडेगा । विश्वास सुफल देगा, दुर्गति नही ।

[यवन सैनिक का प्रवेश]

यवन—देवपुत्र आपकी सेवा में आया चाहते है, क्या आज्ञा है ?

दाण्ड्यायन—मै क्या आज्ञा दूँ सैनिक ! मेरा कोई रहस्य नही, निभृत मन्दिर नही, यहाँ पर सबका प्रत्येक क्षण स्वागत है ।

[सैनिक जाता है]

अलका—तो मै जाती हूँ, आज्ञा हो ।

दाण्ड्यायन—कोई आतक नही है अलका ! ठहरो तो ।

चाणक्य—महात्मन्, हम लोगो को क्या आज्ञा है ? किसी दूसरे समय उपस्थित हो ?

दाण्ड्यायन—चाणक्य ! तुमको तो कुछ दिनो तक इस स्थान पर रहना होगा, क्योकि सब विद्या के आचार्य्य होने पर भी तुम्हे उसका फल नही मिला—उद्वेग नही मिटा । अभी तक तुम्हारे हृदय मे हलचल मची है, यह अवस्था सन्तोषजनक नही ।

[सिकन्दर का सिल्यूकस, कार्नेलिया, एनिसाक्रेटीज इत्यादि सहचरो के साथ प्रवेश, सिकन्दर नमस्कार करता है, सब बैठते है]

दाण्ड्यायन—स्वागत अलक्षेन्द्र ! तुम्हे सुबुद्धि मिले ।

सिकन्दर--महात्मन् ! अनुगृहीत हुआ, परन्तु मुझे कुछ और आशीर्वाद चाहिए ।

दाण्ड्यायन--मैं और आशीर्वाद देने मे असमर्थ हूँ। क्योकि इसके अतिरिक्त जितने आशीर्वाद होंगे, वे अमगलजनक होंगे ।

सिकन्दर--मैं आपके मुख से जय सुनने का अभिलाषी हूँ।

दाण्ड्यायन--जयघोष तुम्हारे चारण करेंगे ; हत्या, रक्तपात और अग्निकाण्ड के लिए उपकरण जुटाने मे मुझे आनन्द नही । विजय-तृष्णा का अन्त पराभव मे होता है, अलक्षेन्द्र ! राजसत्ता सुव्यवस्था से बढे तो बढ सकती है, केवल विजयो से नहीं। इसलिए अपनी प्रजा के कल्याण में लगो ।

सिकन्दर--अच्छा--(**चन्द्रगुप्त को दिखाकर**)--यह तेजस्वी युवक कौन है ?

सिल्यूकस--यह मगध का एक निर्वासित राजकुमार है ।

सिकन्दर--मैं आपका स्वागत करने के लिए अपने शिविर मे निमंत्रित करता हूँ ।

चन्द्रगुप्त--अनुगृहीत हुआ । आर्य्य लोग किसी निमत्रण को अस्वीकार नहीं करते ।

सिकन्दर--(**सिल्यूकस से**)--तुमसे इनसे कब परिचय हुआ ?

सिल्यूकस--इनसे तो मैं पहले ही मिल चुका हूँ ।

चन्द्रगुप्त--आपका उपकारमैं भूला नही हूँ। आपने व्याघ्र से मेरी रक्षा की थी । जब मैं अचेत पड़ा था ।

सिकन्दर--अच्छा तो आप लोग पूर्व-परिचित भी है ! तब तो सेनापति, इनके आतिथ्य का भार आप ही पर रहा ।

सिल्यूकस--जैसी आज्ञा ।

सिकन्दर--(**महात्मा से**)--महात्मन् ! लौटती बार आपका फिर दर्शन करूँगा, जब भारत-विजय कर लूँगा ।

दाण्ड्यायन--अलक्षेन्द्र, सावधान ! (**चन्द्रगुप्त को दिखाकर**)

देखो, यह भारत का भावी सम्राट् तुम्हारे सामने बैठा है।

[सब स्तब्ध होकर चन्द्रगुप्त को देखते हैं और चन्द्रगुप्त आश्चर्य से कार्नेलिया को देखने लगता है । एक दिव्य आलोक]

[पटाक्षेप]

द्वितीय अंक

उद्भाण्ड में सिन्धु के किनारे ग्रीक-शिविर के पास वृक्ष के नीचे कार्नेलिया बैठी हुई

कार्नेलिया—सिन्धु का यह मनोहर तट जैसे मेरी आँखो के सामने एक नया चित्र-पट उपस्थित कर रहा है। इस वातावरण से धीरे-धीरे उठती हुई प्रशान्त स्निग्धता जैसे हृदय मे घुस रही है। लम्बी यात्रा करके, जैसे मैं वही पहुँच गई हूँ, जहाँ के लिए चली थी। यह कितना निसर्ग सुन्दर है, कितना रमणीय है। हाँ, आज वह भारतीय सगीत का पाठ देखूँ, भूल तो नही गई ?

[गाती है]

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ विभा पर—नाच रही तरुशिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर—मगल कुकुम सारा।
लघु सुरधनु से पख पसारे—शीतल मलय समीर सहारे।
उडते खग जिस ओर मुँह किये—समझ नीड निज प्यारा।
बरसाती आँखो के बादल—बनते जहाँ भरे करुणा जल।
लहरें टकराती अनन्त की—पाकर जहाँ किनारा।
हेम कुम्भ ले उषा सवेरे—भरती ढुलकाती सुख मेरे।
मदिर ऊँघते रहते जब—जग कर रजनी भर तारा।

फिलिप्स—(प्रवेश करके)—कैसा मधुर गीत है कार्नेलिया, तुमने तो भारतीय सगीत पर पूरा अधिकार कर लिया है, चाहे हम लोगो को भारत पर अधिकार करने मे अभी विलम्ब हो !

कार्ने०—फिलिप्स ! यह तुम हो ! आज दारा की कन्या वाल्हीक जायगी ?

फिलि०—दारा की कन्या ! नही कुमारी, सम्राज्ञी कहो ।

कार्ने०—असम्भव है फिलिप्स ! ग्रीक लोग केवल देशो को विजय करके समझ लेते है कि लोगो के हृदयो पर भी अधिकार कर लिया । वह देवकुमारी-सी सुन्दर बालिका सम्राज्ञी कहने पर तिलमिला जाती है। उसे यह विश्वास है कि वह एक महान् साम्राज्य की लूट मे मिली हुई दासी है, प्रणय-परिणीता पत्नी नही ।

फिलि०—कुमारी ! प्रणय के सम्मुख क्या साम्राज्य तुच्छ है ?

कार्ने०—यदि प्रणय हो ।

फिलि०—प्रणय को तो मेरा हृदय पहचानता है ।

कार्ने०—(**हंसकर**) ओहो ! यह तो बडी विचित्र बात है !

फिलि०—कुमारी, क्या तुम मेरे प्रेम की हँसी उडाती हो ?

कार्ने०—नही सेनापति ! तुम्हारा उत्कृष्ट प्रेम वडा भयानक होगा, उससे तो डरना चाहिए ।

फिलि०— (**गम्भीर होकर**)—मै पूछने आया हूँ कि आगामी युद्धो से दूर रहने के लिये शिविर की सब स्त्रियाँ स्कन्धावार मे सम्राज्ञी के साथ जा रही है, क्या तुम भी चलोगी ?

कार्ने०—नही, सभवत. पिताजी को यही रहना होगा, इसलिये मेरे जाने की आवश्यकता नही ।

फिलि०—(**कुछ सोचकर**)—कुमारी ! न जाने फिर कब दर्शन हो, इसलिए एक बार इन कोमल करो को चूमने की आज्ञा दो ।

कार्ने०—तुम मेरा अपमान करने का साहस न करो फिलिप्स !

फिलि०—प्राण देकर भी नही कुमारी ! परन्तु प्रेम अन्धा है ।

कार्ने०—तुम अपने अन्धेपन से दूसरे को ठुकराने का लाभ नही उठा सकते फिलिप्स !

फिलिप्स—(**इधर-उधर देखकर**)—यह नही हो सकता—

[**कार्नेलिया का हाथ पकड़ना चाहता है, वह चिल्लाती है—रक्षा करो ! रक्षा करो ! —चन्द्रगुप्त प्रवेश करके फिलिप्स की गर्दन**

पकड़ कर दबाता है, वह गिरकर क्षमा मांगता है, चन्द्रगुप्त छोड़ देता है]

कार्ने०—धन्यवाद आर्य्यवीर !

फिलि०—(लज्जित होकर)—कुमारी, प्रार्थना करता हूँ कि इस घटना को भूल जाओ, क्षमा करो ।

कार्ने०—क्षमा तो कर दूँगी, परन्तु भूल नही सकती फिलिप्स ! तुम अभी चले जाओ ।

[फिलिप्स नतमस्तक जाता है]

चन्द्रगुप्त—चलिये, आपको शिविर के भीतर पहुँचा दूँ ।

कार्ने०—पिताजी कहाँ है ? उनसे यह बात कह देनी होगी, यह घटना...नही, तुम्ही कह देना ।

चन्द्रगुप्त—ओह ! वे मुझे बुला गये है, मै जाता हूँ, उनसे कह दूँगा ।

कार्ने०—आप चलिये, मै आती हूँ ।

[चन्द्रगुप्त का प्रस्थान]

कार्ने०—एक घटना हो गई, फिलिप्स ने विनती की उसे भूल जाने की, किन्तु उस घटना से और भी किसी का सम्बन्ध है, उसे कैसे भूल जाऊँ। उन दोनो मे शृंगार और रौद्र का संगम है । वह भी आह, कितना आकर्षक है ! कितना तरग-सकुल है ! इसी चन्द्रगुप्त के लिए न उस साधु ने भविष्यवाणी की है—भारत-सम्राट् होने की ! उसमें कितनी विनयशील वीरता है !

[प्रस्थान]

[कुछ सैनिको के साथ सिकन्दर का प्रवेश]

सिकन्दर—विजय करने की इच्छा क्लान्ति से मिलती जा रही है। हम लोग इतने बडे आक्रमण के समारम्भ मे लगे है और यह देश जैसे सोया हुआ है, लड़ना जैसे इनके जीवन का उद्वेगजनक अश नही । अपने ध्यान में दार्शनिक के सदृश निमग्न है । सुनते है, पौरव ने केवल झेलम

के पास कुछ सेना प्रतिरोध करने के लिए या केवल देखने के लिए रख छोडी है। हम लोग जब पहुँच जायँगे, तब वे लड लेगे।

एनि०—मुझे तो ये लोग आलसी मालूम पडते है।

सिकन्दर—नही-नही, यहाँ दार्शनिक की परीक्षा तो तुम कर चुके—दाण्ड्यायन को देखा न! थोडा ठहरो, यहाँ के वीरो का भी परिचय मिल जायगा। यह अद्भुत देश है।

एनि०—परन्तु आम्भीक तो अपनी प्रतिज्ञा का सच्चा निकला—प्रबन्ध तो उसने अच्छा कर रक्खा है।

सिकन्दर—लोभी है! सुना है कि उसकी एक बहन चिढकर सन्यासिनी हो गई है।

एनि०—मुझे विश्वास नही होता, इसमे कोई रहस्य होगा। पर एक बात कहूँगा, ऐसे पथ मे साम्राज्य की समस्या हल करना कहाँ तक ठीक है? क्यो न शिविर मे ही चला जाय?

सिकन्दर—एनिसाक्रेटीज, फिर तो परसिपोलिन का राजमहल छोडने की आवश्यकता न थी, यहाँ एकान्त मे मुझे कुछ ऐसी बातो पर विचार करना है, जिन पर भारत-अभियान का भविष्य निर्भर है। मुझे उस नगे ब्राह्मण की बातो से बडी आशका हो रही है, भविष्यवाणियाँ प्राय: सत्य होती है।

[एक ओर से फिलिप्स, आम्भीक, दूसरी ओर से सिल्यूकस और चन्द्रगुप्त का प्रवेश]

सिकन्दर—कहो फिलिप्स! तुम्हे क्या कहना है?

फिलि०—आम्भीक से पूछ लिया जाय।

आम्भीक—यहाँ एक षड्यन्त्र चल रहा है।

फिलि०—और उसके सहायक है सिल्यूकस।

सिल्यूकस—(**क्रोध और आश्चर्य से**)—इतनी नीचता! अभी उस लज्जाजनक अपराध का प्रकट करना बाकी ही रहा—उलटा अभि-

योग ! प्रमाणित करना होगा फिलिप्स ! नही तो खड्ग इसका न्याय करेगा ।

सिकन्दर—उत्तेजित न हो सिल्यूकस !

फिलि०—तलवार तो कभी का न्याय कर देती, परन्तु देवपुत्र का भी जान लेना आवश्यक था। नही तो ऐसे निर्लज्ज विद्रोही की हत्या करना भी पाप नही, पुण्य है ।

[**सिल्यूकस तलवार खीचता है**]

सिकन्दर—तलवार खीचने से अच्छा होता कि तुम अभियोग को निर्मूल प्रमाणित करने की चेष्टा करते ! बतलाओ, तुमने चन्द्रगुप्त के लिए अब क्या सोचा ?

सिल्यूकस—चन्द्रगुप्त ने अभी-अभी कार्नेलिया को इस नीच फिलिप्स के हाथ से अपमानित होने से बचाया है और मै स्वय यह अभियोग आपके सामने उपस्थित करनेवाला था ।

सिकन्दर—परन्तु साहस नही हुआ, क्यो सिल्यूकस !

फिलि०—क्यो साहस होता—इनकी कन्या दाण्डचायन के आश्रम पर भारतीय दर्शन पढने जाती है, भारतीय सगीत सीखती है, वही पर विद्रोहकारिणी अलका भी आती है ! और चन्द्रगुप्त के लिए यह जनरव फैलाया गया है कि यही भारत का भावी सम्राट् होगा !

सिल्यूकस—रोक, अपनी अबाधगति से चलने वाली जीभ रोक !

सिकन्दर—ठहरो सिल्यूकस ! तुम अपने को विचाराधीन समझो। हाँ, तो चन्द्रगुप्त ! मुझे तुमसे कुछ पूछना है ।

चन्द्रगुप्त—क्या है ?

सिकन्दर—सुना है कि मगध का वर्तमान शासक एक नीच-जन्मा जारज सन्तान है । उसकी प्रजा असन्तुष्ट है और तुम उस राज्य को हस्तगत करने का प्रयत्न कर रहे हो ?

चन्द्रगुप्त—हस्तगत ! नही, उसका शासन बडा क्रूर हो गया है, मगध का उद्धार करना चाहता हूँ ।

सिकन्दर—और उस ब्राह्मण के कहने पर अपने सम्राट् होने का तुम्हे विश्वास हो गया होगा, जो परिस्थिति को देखते हुए असम्भव भी नही जान पड़ता ।

चन्द्रगुप्त—असम्भव क्यो नही ?

सिकन्दर—हमारी सेना इसमे सहायता करेगी, फिर भी असम्भव है !

चन्द्रगुप्त—मुझे आप से सहायता नही लेनी है ।

सिकन्दर—(**क्रोध से**)—फिर इतने दिनो तक ग्रीक-शिविर मे रहने का तुम्हारा उद्देश्य ?

चन्द्रगुप्त—एक सादर निमत्रण और सिल्यूकस से उपकृत होने के कारण उनके अनुरोध की रक्षा । परन्तु मै यवनो को अपना शासक बनने को आमन्त्रित करने नही आया हूँ ।

सिकन्दर—परन्तु इन्ही यवनो के द्वारा भारत जो आज तक कभी भी आक्रान्त नही हुआ है, विजित किया जायगा ।

चन्द्रगुप्त—वह भविष्य के गर्भ मे है, उसके लिए अभी से इतनी उछल-कूद मचाने की आवश्यकता नही ।

सिकन्दर—अबोध युवक, तू गुप्तचर है !

चन्द्रगुप्त—नही, कदापि नही । अवश्य ही यहाँ रहकर यवन रण-नीति से मै कुछ परिचित हो गया हूँ । मुझे लोभ से पराभूत गान्धार-राज आम्भीक समझने की भूल न होनी चाहिए, मै मगध का उद्धार करना चाहता हूँ । परन्तु यवन लुटेरो की सहायता से नही ।

सिकन्दर—तुमको अपनी विपत्तियो से डर नही—ग्रीक लुटेरे है ?

चन्द्रगुप्त—क्या यह झूठ है ? लूट के लोभ से हत्या-व्यवसायियो को एकत्र करके उन्हे वीर-सेना कहना, रण-कला का उपहास करना है ।

सिकन्दर—(**आश्चर्य और क्रोध से**)—सिल्यूकस !

चन्द्रगुप्त—सिल्यूकस नही, चन्द्रगुप्त से कहने की बात चन्द्रगुप्त से कहनी चाहिए ।

आम्भीक—शिष्टता से बाते करो ।

चन्द्रगुप्त—स्वच्छ हृदय भीरु कायरो की-सी वचक शिष्टता नही जानता। अनार्य्य ! देशद्रोही ! आम्भीक ! चन्द्रगुप्त रोटियो की लालच से या घृणाजनक लोभ से सिकन्दर के पास नही आया है।

सिकन्दर—बन्दी कर लो इसे।

[आम्भीक, फिलिप्स, एनिसाक्रेटीज टूट पड़ते है ; चन्द्रगुप्त असाधारण वीरता से तीनो को घायल करता हुआ निकल जाता है]

सिकन्दर—सिल्यूकस !

सिल्यूकस—सम्राट् !

सिकन्दर—यह क्या ?

सिल्यूकस—आप का अविवेक। चन्द्रगुप्त एक वीर युवक है, यह आचरण उसकी भावी श्री और पूर्ण मनुष्यता का द्योतक है सम्राट् ! हम लोग जिस काम से आये है, उसे करना चाहिए। फिलिप्स को अन्त पुर की महिलाओ के साथ वाल्हीक जाने दीजिए।

सिकन्दर—(सोचकर)—अच्छा जाओ !

[प्रस्थान]

२

झेलम-तट का वनपथ

[चाणक्य, चन्द्रगुप्त और अलका का प्रवेश]

अलका—आर्य्य ! अब हम लोगो का क्या कर्त्तव्य है ?

चाणक्य—पलायन ।

चन्द्र०—व्यग न कीजिए गुरुदेव !

चाणक्य—दूसरा उपाय क्या है ?

अलका—है क्यो नही ?

चाणक्य—हो सकता है,—(दूसरी ओर देखने लगता है)

चन्द्र०—गुरुदेव !

चाणक्य—परिव्राजक होने की इच्छा है क्या ? यही एक सरल उपाय है !

चन्द्र०—नही, कदापि नही । यवनो को प्रतिपद में बाधा देना मेरा कर्त्तव्य है और शक्ति-भर प्रयत्न करूँगा ।

चाणक्य—यह तो अच्छी बात है । परन्तु सिहरण अभी नही आया ।

चन्द्र०—उसे समाचार मिलना चाहिए ।

चाणक्य—अवश्य मिला होगा ।

अलका—यदि न आ सके ?

चाणक्य—जब काली घटाओ से आकाश घिरा हो, रह-रहकर बिजली चमक जाती हो, पवन स्तब्ध हो, उमस बढ रही हो, और आषाढ के आरम्भिक दिन हो, तब किस बात की सभावना करनी चाहिए ?

अलका—जल बरसने की ।

चाणक्य—ठीक उसी प्रकार जब देश मे युद्ध हो, सिहरण मालव को समाचार मिला हो, तब उसके आने की भी निश्चित आशा है ।

चन्द्र०—उधर देखिये—वे दो व्यक्ति कौन आ रहे है ।

[सिंहरण का सहारा लिये वृद्ध गांधार-राज का प्रवेश]

चाणक्य---राजन् !

गांधार-राज---विभव की छलनाओ से वचित एक वृद्ध ! जिसके पुत्र ने विश्वासघात किया हो और कन्या ने साथ छोड दिया हो---मै वही, एक अभागा मनुष्य हूँ !

अलका---पिताजी !---(गले से लिपट जाती है)

गांधार०---वेटी अल्का, अरे तू कहाँ भटक रही है ?

अलका---कही नही पिताजी ! आप के लिए छोटी-सी झोपडी वना रक्खी है, चलिये विश्राम कीजिये ।

गाधार०---नही , तू मुझे अपनी झोपडी में विठा कर चली जायगी। जो महलो को छोड चुकी है, उसका झोपडियो के लिए क्या विश्वास !

अलका---नही पिताजी, विश्वास कीजिये। (सिंहरण से) मालव ! मै कृतज्ञ हुई।

[सिंहरण सस्मित नमस्कार करता है। पिता के साथ अलका का प्रस्थान]

चाणक्य---सिहरण ! तुम आ गये, परन्तु...... ।

सिंह०---किन्तु-परन्तु नही आर्य्य ! आप आज्ञा दीजिये, हम लोग कर्त्तव्य में लग जायँ ! विपत्तियो के वादल-मँडरा रहे है।

चाणक्य---उसकी चिन्ता नही। पौधे अन्धकार मे वढते है, और मेरी नीति-लता भी उसी भाँति विपत्ति-तम मे लहलही होगी। हाँ, केवल शौर्य्य से काम नही चलेगा। एक वात समझ लो, चाणक्य सिद्धि देखता है, साधन चाहे कैसे ही हो। वोलो---तुम लोग प्रस्तुत हो ?

सिह०---हम लोग प्रस्तुत है।

चाणक्य---तो युद्ध नही करना होगा।

चन्द्र०---फिर क्या ?

चाणक्य---सिहरण और अल्का को नट और नटी वनाना होगा, चन्द्रगुप्त वनेगा सँपेरा और मै ब्रह्मचारी। देख रहे हो चन्द्रगुप्त, पर्वतेश्वर की सेना मे जो एक गुल्म अपनी छावनी अल्ग डाले है, वे सैनिक कहाँ के है ?

चन्द्र०—नही जानता ।

चाणक्य—अभी जानने की आवश्यकता भी नही । हम लोग उसी सेना के साथ अपने स्वॉग रक्खेगे । वही हमारे खेल होगे । चलो हम लोग चले ; देखो—वह नवीन गुल्म का युवक-सेनापति जा रहा है ।

(**सब का प्रस्थान**)

[**पुरुष-वेष में कल्याणी और सैनिक का प्रवेश**]

कल्याणी—सेनापति ! मैनें दुस्साहस करके पिताजी को चिढा तो दिया, पर अब कोई मार्ग बताओ, जिससे मै सफलता प्राप्त कर सकूँ । पर्वतेश्वर को नीचा दिखलाना ही हमारा उद्देश्य है ।

सेना०—राजकुमारी !

कल्याणी—सावधान सेनापति !

सेनापति—क्षमा हो, अब ऐसी भूल न होगी । हॉ, तो केवल एक मार्ग है ।

कल्याणी—वह क्या ?

सेना०—घायलो की शुश्रूषा का भार ले लेना है ।

कल्याणी—मगध सेनापति ! तुम कायर हो ।

सेना०—तब जैसी आज्ञा हो !—(**स्वगत**) स्त्री की अधीनता वैसे ही बुरी होती है, तिसपर युद्धक्षेत्र में ! भगवान ही बचावे ।

कल्याणी—मेरी इच्छा है कि जब पर्वतेश्वर यवन-सेना द्वारा चारो ओर से घिर जाय, उस समय उसका उद्धार करके अपना मनोरथ पूर्ण करूँ ।

सेना०—बात तो अच्छी है ।

कल्याणी—और तब तक हम लोगो की रक्षित सेना —(रुककर देखते हुए)—यह लो पर्वतेश्वर इधर ही आ रहा है !

[**पर्वतेश्वर का युद्ध-वेश में प्रवेश**]

पर्वतेश्वर—(**दूर दिखला कर**)—वह किस गुल्म का शिविर है युवक ?

कल्याणी—मगध-गुल्म का महाराज !

पर्व०—मगध की सेना, असम्भव ! उसन तो रण-निमत्रण ही अस्वीकृत किया था ।

कल्याणी—परन्तु मगध की वडी सेना मे से एक छोटा-सा वीर युवको का दल इस युद्ध के लिए परम उत्साहित था। स्वेच्छा से उसने इस युद्ध मे योग दिया है।

पर्व०—प्राच्य मनुप्यो मे भी इतना उत्साह !

[**हसता है**]

कल्याणी—महाराज, उत्साह का निवास किसी विशेष दिशा मे नही है !

पर्व०—(**हंसकर**) प्रगल्भ हो युवक , परन्तु रण जव नाचने लगता है, तब भी यदि तुम्हारा उत्साह वना रहे तो मानूँगा । हाँ ! तुम वडे सुन्दर सुकुमार हो, इसलिए साहस न कर वैठना । तुम मेरी रक्षित सेना के साथ रहो तो अच्छा ! समझे न !

कल्याणी—जैसी आज्ञा !

[**चन्द्रगुप्त, सिंहरण और अलका का वेश वदले हुए प्रवेश**]

सिंह—खेल देख लो ! ऐसा खेल—जो कभी न देखा हो, न सुना !

पर्व०—नट ! इस समय खेल देखने का अवकाश नही ।

अलका—क्या युद्ध के पहले ही घवरा गये, सेनापति ! वह भी तो वीरो का खेल ही है !

पर्व०—वडी ढीठ है !

चन्द्र०—न हो तो नागो का ही दर्शन कर लो !

कल्याणी—वडा कौतुक है महाराज, इन नागो को ये लोग किस प्रकार वश कर लेते है ?

चन्द्र०—(**सम्भ्रम से**)—महाराज है ! तव तो अवश्य पुरस्कार मिलेगा।

[संपेरों की-सी चेष्टा करता है। पिटारी खोलकर सांप निकालता है]

कल्याणी—आश्चर्य है, मनुष्य ऐसे कुटिल विषधरो को भी वश कर सकता है, परन्तु मनुष्य को नही !

पर्व०—नट, नागो पर तुम लोगो का अधिकार कैसे हो जाता है ?

चन्द्र०—मंत्र-महौषधि के भाले से बडे-बडे मत्त नाग वशीभूत होते हैं।

पर्व०—भाले से ?

सिंह०—हाँ महाराज ! वैसे ही जैसे भालो से मदमत्त मातंग !

पर्व०—तुम लोग कहाँ से आ रहे हो ?

सिंह०—ग्रीको के शिविर से।

चन्द्र०—उनके भाले भारतीय हाथियो के लिए वज्र ही है।

पर्व०—तुम लोग आम्भीक के चर तो नही हो ?

सिंह०—रातोरात यवन-सेना वितस्ता के पार हो गई है—समीप है, महाराज ! सचेत हो जाइए !

पर्व०—मगधनायक ! इन लोगो को वन्दी करो।

[चन्द्रगुप्त कल्याणी को ध्यान से देखता है]

अलका—उपकार का भी यह फल !

चन्द्र०—हम लोग, वन्दी ही है। परन्तु रण-व्यूह से सावधान होकर सैन्य-परिचालन कीजिए। जाइए महाराज ! यवन-रणनीति भिन्न है।

[पर्वतेश्वर उद्विग्न भाव से जाता है]

कल्याणी—(सिंहरण से)—चलो हमारे शिविर म ठहरो। फिर बताया जायगा।

चन्द्र०—मुझे कुछ कहना है।

कल्याणी—अच्छा, तुम लोग आगे चलो।

[सिंहरण इत्यादि आगे बढ़ते हैं]

चन्द्र०—इस युद्ध मे पर्वतेश्वर की पराजय निश्चित है।

कल्याणी--परन्तु तुम कौन हो--(ध्यान से देखती हुई)--मैं तुमको पहचान......... .

चन्द्र०--मगध का एक सँपेरा !

कल्याणी--हूँ ! और भविष्यवक्ता भी !

चन्द्र०--मुझे मगध की पताका के सम्मान की........

कल्याणी--कौन ? चन्द्रगुप्त तो नही ?

चन्द्र०--अभी तो एक सँपेरा हूँ राजकुमारी कल्याणी !

कल्याणी--(एक क्षण चुप रहकर)--हम दोनो को चुप रहना चाहिये । चलो !

[दोनो का प्रस्थान]

३

युद्धक्षेत्र—सैनिकों के साथ पर्वतेश्वर

पर्व०—सेनापति, भूल हुई।

सेना०—हाथियो ने ही ऊधम मचा रक्खा है और रथी सेना भी व्यर्थ-सी हो रही है।

पर्व०—सेनापति, युद्ध में जय या मृत्यु—दो मे से एक होनी चाहिये।

सेना०—महाराज, सिकन्दर को वितस्ता पर यह अच्छी तरह विदित हो गया है कि हमारे खड्गो मे कितनी धार है। स्वय सिकन्दर का अश्व मारा गया और राजकुमार के भीषण भाले की चोट सिकन्दर न सँभाल सका।

पर्व०—प्रशसा का समय नही है। शीघ्रता करो। मेरा रणगज प्रस्तुत हो; मै स्वय गजसेना का सचालन करूँगा। चलो!

(सब जाते है)

[कल्याणी और चन्द्रगुप्त का प्रवेश]

कल्याणी—चन्द्रगुप्त, तुम्हे यदि मगध सेना विद्रोही जानकर बन्दी बनावे?

चन्द्र०—बन्दी सारा देश है राजकुमारी, दारुण द्वेष से सब जकड़े है। मुझको इसकी चिन्ता भी नही। परन्तु राजकुमारी का युद्धक्षेत्र में आना अनोखी बात है!

कल्याणी—केवल तुम्हे देखने के लिए! मै जानती थी कि तुम युद्ध मे अवश्य सम्मिलित होगे और मुझे भ्रम हो रहा है कि तुम्हारे निर्वासन के भीतरी कारणो मे एक मै भी हूँ।

चन्द्र०—परन्तु राजकुमारी, मेरा हृदय देश की दुर्दशा से व्याकुल है। इस ज्वाला मे स्मृतिलता मुरझा गयी है।

कल्याणी—चन्द्रगुप्त!

चन्द्र०—राजकुमारी! समय नही। देखो—वह भारतीयो के

च० ८

प्रतिकूल दैव ने मेघमाला का सृजन किया है। रथ बेकार होंगे और हाथियो का प्रत्यावर्त्तन और भयानक हो रहा है।

कल्याणी—तब ! मगध-सेना तुम्हारे अधीन है, जैसा चाहो करो।

चन्द्र०—पहले उस पहाडी पर सेना एकत्र होनी चाहिये। शीघ्र आवश्यकता होगी। पर्वतेश्वर की पराजय को रोकने की चेष्टा कर देखूँ।

कल्याणी—चलो !

[मेघो की गड़गड़ाहट—दोनो जाते हैं]

[एक ओर से सिल्यूकस, दूसरी ओर से पर्वतेश्वर का ससैन्य प्रवेश, युद्ध]

सिल्यू०—पर्वतेश्वर ! अस्त्र रख दो !

पर्व०—यवन ! सावधान ! बचाओ अपने को !

[तुमुलयुद्ध ; घायल होकर सिल्यूकस का हटना]

पर्व०—सेनापति ! देखो, उन कायरो को रोको। उनसे कह दो कि आज रणभूमि मे पर्वतेश्वर पर्वत के समान अचल है। जय-पराजय की चिन्ता नही। इन्हे बतला देना होगा कि भारतीय लडना जानते है। बादलो से पानी बरसने की जगह वज्र बरसे, सारी गज-सेना छिन्न-भिन्न हो जाय, रथी विरथ हो, रक्त के नाले धमनियो मे बहे, परन्तु एक पग भी पीछे हटना पर्वतेश्वर के लिए असम्भव है। धर्मयुद्ध मे प्राण-भिक्षा माँगनेवाले भिखारी हम नही। जाओ, उन भगोडो से एक बार जननी के स्तन्य की लज्जा के नाम पर रुकने के लिए कहो ! कहो कि मरने का क्षण एक ही है। जाओ।

[सेनापति का प्रस्थान। सिंहरण और अलका का प्रवेश]

सिंह०—महाराज ! यह स्थान सुरक्षित नही। उस पहाडी पर चलिए।

पर्व०—तुम कौन हो युवक !

सिंह०—एक मालव।

पर्व०—मालव के मुख से ऐसा कभी नही सुना गया। मालव ! खड्ग-क्रीडा देखनी हो तो खड़े रहो। डर लगता हो तो पहाडी पर जाओ।

सिंह०—महाराज, यवनो का एक दल वह आ रहा है !

पर्व०—आने दो। तुम हट जाओ।

[सिल्यूकस और फिलिप्स का प्रवेश—सिंहरण और पर्वतेश्वर का युद्ध और लड़खड़ा कर गिरने की चेष्टा। चन्द्रगुप्त और कल्याणी का सैनिकों के साथ पहुंचना। दूसरी ओर से सिकन्दर का आना। युद्ध बन्द करने के लिए सिकन्दर की आज्ञा।]

चन्द्र०—युद्ध होगा !

सिक०—कौन, चन्द्रगुप्त !

चन्द्र०—हाँ देवपुत्र !

सिक०—किससे युद्ध ! मुमूर्षु घायल पर्वतेश्वर—वीर पर्वतेश्वर से ! कदापि नही। आज मुझे जय-पराजय का विचार नही है। मैंने एक अलौकिक वीरता का स्वर्गीय दृश्य देखा है। होमर की कविता मे पढी हुई, जिस कल्पना से मेरा हृदय भरा है, उसे यहाँ प्रत्यक्ष देखा ! भारतीय वीर पर्वतेश्वर ! अब मै तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार करूँ ?

पर्व०—(रक्त पोंछते हुए)—जैसा एक नरपति अन्य नरपति के साथ करता है, सिकन्दर !

सिक०—मै तुमसे मैत्री करना चाहता हूँ। विस्मय-विमुग्ध होकर तुम्हारी सराहना किए बिना मै नही रह सकता—धन्य ! आर्य्य वीर !

पर्व०—मै तुमसे युद्ध न करके मैत्री भी कर सकता हूँ।

चन्द्र०—पचनद-नरेश ! आप क्या कर रहे है ! समस्त मगध-सेना आपकी प्रतीक्षा मे है, युद्ध होने दीजिए !

कल्याणी—इन थोडे-से अर्धजीव यवनो को विचलित करने के लिए पर्याप्त मागध सेना है। महाराज ! आज्ञा दीजिये।

पर्व०—नही युवक ! वीरता भी एक सुन्दर कला है, उसपर मुग्ध होना आश्चर्य की बात नही, मैंने वचन दे दिया, अब सिकन्दर चाहे हटे।

सिक०—कदापि नही।

कल्याणी—(शिरस्त्राण फेंककर)—जाती हूँ क्षत्रिय पर्वतेश्वर! तुम्हारे पतन मे रक्षा न कर सकी, बडी निराशा हुई !

पर्व०—तुम कौन हो ?

चन्द्र०—मागध-राजकुमारी कल्याणी देवी ।

पर्व०—ओह पराजय ! निकृष्ट पराजय !

[चन्द्रगुप्त और कल्याणी का प्रस्थान। सिकन्दर आश्चर्य से देखता है। अलका घायल सिंहरण को उठाया चाहती है कि आम्भीक आकर दोनों को वन्दी करता है।]

पर्व०—यह क्या ?

आम्भीक—इनको अभी वन्दी वना रखना आवश्यक है ।

पर्व०—तो वे लोग मेरे यहाँ रहेगे ।

सिक०—पचनद-नरेश की जैसी इच्छा हो ।

४

[मालव में सिंहरण के उद्यान का एक अंश]

मालविका—(प्रवेश करके)—फूल हँसते हुए आते है, फिर मकरद गिरा मुरझा जाते है, आँसू से धरणी को भिगो कर चले जाते है ! एक स्निग्ध समीर का झोका आता है, निश्वास फेक कर चला जाता है। क्या पृथ्वी तल रोने ही के लिए है ? नही, सब के लिए एक ही नियम तो नहीं। कोई रोने के लिए है तो कोई हँसने के लिए—(विचारती हुई)—आजकल तो छुट्टी-सी है, परन्तु एक विचित्र विदेशियो का दल यहाँ ठहरा है, उनमे से एक को तो देखते ही डर लगता है। लो—वह युवक आ गया !

[सिर झुका कर फूल संवारने लगती है—ऐन्द्रजालिक के वेश में चन्द्रगुप्त का प्रवेश]

चन्द्र०—मालविका !

माल०—क्या आज्ञा है ?

चन्द्र०—तुम्हारे नागकेसर की क्यारी कैसी है ?

माल०—हरी-भरी !

चन्द्र०—आज कुछ खेल भी होगा, देखोगी ?

माल०—खेल तो नित्य ही देखती हूँ। न जाने कहाँ से लोग आते है, और कुछ-न-कुछ अभिनय करते हुए चले जाते है। इसी उद्यान के कोने से, बैठी हुई सब देखा करती हूँ।

चन्द्र०—मालविका, तुमको कुछ गाना आता है ?

माल०—आता तो है, परन्तु.......

चन्द्र०—परन्तु क्या ?

माल०—युद्धकाल है। देश मे रणचर्चा छिडी है। आजकल मालव-स्थान में कोई गाता-बजाता नही।

चन्द्र०—रण-भेरी के पहले यदि मधुर मुरली की एक तान सुन

लूँ, तो कोई हानि न होगी। मालविका! न जाने क्यों आज ऐसी कामना जाग पड़ी है।

माल०—अच्छा सुनिए—

[**अचानक चाणक्य का प्रवेश**]

चाणक्य—छोकरियों से बातें करने का समय नहीं है मौर्य्य!

चन्द्र०—नहीं गुरुदेव! मैं आज ही विपाशा के तट से आया हूँ, यवन-शिविर भी घूम कर देख आया हूँ।

चाणक्य—क्या देखा?

चन्द्र०—समस्त यवन-सेना शिथिल हो गई है। मगध का इन्द्रजाली जानकर मुझसे यवन-सैनिकों ने वहाँ की सेना का हाल पूछा। मैंने कहा—पंचनद के सैनिकों से भी दुर्धर्ष कई रण-कुशल योद्धा शतद्रु-तट पर तुम लोगों की प्रतीक्षा कर रहे हैं! यह सुनकर कि नन्द के पास कई लाख सेना है, उन लोगों में आतंक छा गया और एक प्रकार का विद्रोह फैल गया।

चाणक्य—हाँ! तब क्या हुआ! केलिस्थनीज के अनुयायियों ने क्या किया?

चन्द्र०—उनकी उत्तेजना से सैनिकों ने विपाशा को पार करना अस्वीकार कर दिया और यवन, देश लौट चलने के लिए आग्रह करने लगे। सिकन्दर के बहुत अनुरोध करने पर भी वे युद्ध के लिए सहमत नहीं हुए। इसलिए रावी के जलमार्ग से लौटने का निश्चय हुआ है। अब उनकी इच्छा युद्ध की नहीं है।

चाणक्य—और क्षुद्रकों का क्या समाचार है?

चन्द्र०—वे भी प्रस्तुत हैं। मेरी इच्छा है कि इस जगद्विजेता का ढोंग करनेवाले को एक पाठ पराजय का पढ़ा दिया जाय। परन्तु इस समय यहाँ सिंहरण का होना अत्यन्त आवश्यक है।

चाणक्य—अच्छा देखा जायगा। सम्भवत स्कन्धावार में मालवों की

युद्ध-परिषद होगी । अत्यन्त सावधानी से काम करना होगा । मालवो को मिलाने का पूरा प्रयत्न तो हमने कर लिया है ।

चन्द्र०—चलिए, मै अभी आया ।

[चाणक्य का प्रस्थान]

माल०—यह खेल तो बडा भयानक होगा मागध ।

चन्द्र०—कुछ चिन्ता नही । अभी कल्याणी नही आई ।

[एक सैनिक का प्रवेश]

चन्द्र०—क्या है ?

सैनिक—सेनापति ! मगध-सेना के लिए क्या आज्ञा है ?

चन्द्र०—विपाशा और शतद्रु के बीच जहाँ अत्यन्त सकीर्ण भू-भाग है, वही अपनी सेना रखो । स्मरण रखना कि विपाशा पार करने पर मगध का साम्राज्य ध्वस करना यवनो के लिए बडा साधारण काम हो जायगा । सिकन्दर की सेना के सामने इतना विराट् प्रदर्शन होना चाहिए कि वह भयभीत हो ।

सैनिक—अच्छा, राजकुमारी ने पूछा है कि आप कब तक आवेगे ? उनकी इच्छा मालव मे ठहरने की नही है ।

चन्द्र०—राजकुमारी से मेरा प्रणाम कहना और कह देना कि मै सेनापति का पुत्र हूँ, युद्ध ही मेरी आजीविका है । क्षुद्रको की सेना का मै सेनापति होने के लिये आमत्रित किया गया हूँ । इसलिए मै यहाँ रहकर भी मगध की अच्छी सेवा कर सकूँगा ।

सैनिक—जैसी आज्ञा —(जाता है)

चन्द्र०—(कुछ सोच कर) सैनिक !

[सैनिक फिर लौट आता है]

सैनिक—क्या आज्ञा है ?

चन्द्र०—राजकुमारी से कह देना कि मगध जाने की उत्कट इच्छा होने पर भी वे सेना साथ न ले जायँ ।

सैनिक—इसका उत्तर भी लेकर आना होगा ?

चन्द्र०—नही।

[सैनिक का प्रस्थान]

माल०—मालव मे बहुत-सी बाते मेरे देश से विपरीत है। इनकी युद्ध-पिपासा बलवती है। फिर युद्ध !

चन्द्र०—तो क्या तुम इस देश की नही हो ?

माल०—नही, मै सिन्ध की रहने वाली हूँ आर्य्य ! वहाँ युद्ध-विग्रह नही, न्यायालयो की आवश्यकता नही। प्रचुर स्वर्ण के रहते भी कोई उसका उपयोग नही। इसलिए अर्थमूलक विवाद कभी उठते ही नही। मनुष्य के प्राकृतिक जीवन का सुन्दर पालना मेरा सिन्धुदेश है।

चन्द्र०—तो यहाँ कैसे चली आई हो ?

माल०—मेरी इच्छा हुई कि और देशो को भी देखूँ। तक्षशिला में राजकुमारी अलका से कुछ ऐसा स्नेह हुआ कि वही रहने लगी। उन्होंने मुझे घायल सिहरण के साथ यहाँ भेज दिया। कुमार सिहरण बडे सहृदय है। परन्तु मागध, तुमको देखकर तो मै चकित हो जाती हूँ ! कभी इन्द्रजाली, कभी कुछ ! भला इतना सुन्दर रूप तुम्हे विकृत करने की क्या आवश्यकता है ?

चन्द्र०—शुभे, मै तुम्हारी सरलता पर मुग्ध हूँ। तुम इन बातो को पूँछकर क्या करोगी ! (प्रस्थान)

माल०—स्नेह से हृदय चिकना हो जाता है। परन्तु बिछलने का भय भी होता है।—अद्भुत युवक है। देखूँ कुमार सिहरण कब आते है।

[पट-परिवर्तन]

५

स्थान—वंदीगृह, घायल सिंहरण और अलका

अलका—अब तो चल-फिर सकोगे ?

सिंह०—हाँ अलका, परन्तु वन्दीगृह मे चलना-फिरना व्यर्थ है।

अलका—नही मालव, बहुत शीघ्र स्वस्थ होने की चेष्टा करो। तुम्हारी आवश्यकता है।

सिंह०—क्या ?

अलका—सिकन्दर की सेना रावी पार हो रही है। पचनद से सधि हो गई, अव यवन लोग निश्चिन्त होकर आगे वढना चाहते है। आर्य चाणक्य का एक चर यह सदेश सुना गया है।

सिंह०—कैसे ?

अलका—क्षपणक-वेश मे गीत गाता हुआ भीख माँगता आता था, उसने सकेत से अपना तात्पर्य कह सुनाया।

सिंह०—तो क्या आर्य्य चाणक्य जानते है कि मै यहाँ वन्दी हूँ ?

अलका—हाँ, आर्य्य चाणक्य इधर की सब घटनाओ को जानते है ?

सिंह०—तब तो मालव पर शीघ्र ही आक्रमण होगा !

अलका—कोई डरने की बात नही, क्योकि चन्द्रगुप्त को साथ लेकर आर्य्य ने वहाँ पर एक बडा भारी कार्य किया है। क्षुद्रको और मालवो में सधि हो गई है। चन्द्रगुप्त को उनकी सम्मिलित सेना का सेनापति बनाने का उद्योग हो रहा है।

सिंह०—(उठकर)—तब तो अलका, मुझे शीघ्र पहुँचना चाहिए।

अलका—परन्तु तुम वन्दी हो।

सिंह०—जिस तरह हो सके अलके, मुझे पहुँचाओ।

अलका—(कुछ सोचने लगती है)—तुम जानते हो कि मै क्यो वन्दिनी हूँ ?

सिंह०—क्यो ?

अलका—आम्भीक से पर्वतेश्वर की सधि हो गई है और स्वय

सिकन्दर ने विरोध मिटाने के लिए पर्वतेश्वर की भगिनी से आम्भीक का व्याह करा दिया है, परन्तु आम्भीक ने यह जानकर भी कि मै यहाँ वन्दिनी हूँ मुझे छुडाने का प्रयत्न नही किया। उसकी भीतरी इच्छा थी, कि पर्वतेश्वर की कई रानियो मे से एक मै भी हो जाऊँ, परन्तु मैने अस्वीकार कर दिया।

सिह०—अलका, तब क्या करना होगा ?

अलका—यदि मै पर्वतेश्वर से व्याह करना स्वीकार करूँ, तो सभव है कि तुमको छुडा दूँ।

सिह०—मै.... .....अलका! मुझसे पूछती हो!

अलका—दूसरा उपाय क्या है ?

सिंह०—मेरा सिर घूम रहा है। अलका! तुम पर्वतेश्वर की प्रणयिनी बनोगी! अच्छा होता कि इसके पहले ही मै न रह जाता।

अलका—क्यो मालव, इसमे तुम्हारी कुछ हानि है ?

सिह०—कठिन परीक्षा न लो अलका! मै बडा दुर्बल हूँ। मैने जीवन और मरण मे तुम्हारा सग न छोडने का प्रण किया है।

अलका—मालव, देश की स्वतत्रता तुम्हारी आशा मे है।

सिंह०—और तुम पचनद की अधीश्वरी बनने की आशा मे... तब मुझे रणभूमि मे प्राण देने की आज्ञा दो।

अलका—(हंसती हुई)—चिढ गए! आर्य्य चाणक्य की आज्ञा है कि थोडी देर पचनद का सूत्र-सचालन करने के लिए मै यहाँ की रानी बन जाऊँ।

सिह०—यह भी कोई हँसी है!

अलका—बन्दी! जाओ सो रहो, मै आज्ञा देती हूँ।

[सिंहरण का प्रस्थान]

अलका—सुन्दर निश्छल हृदय, तुमसे हँसी करना भी अन्याय है! परन्तु व्यथा को दबाना पडेगा। सिहरण को मालव भेजने के लिए प्रणय के साथ अत्याचार करना होगा।

[गाती है]

प्रथम यौवन-मदिरा से मत्त, प्रेम करने की थी परवाह
और किसको देना है हृदय, चीन्हने की न तनिक थी चाह।
बेच डाला था हृदय अमोल, आज वह माँग रहा था दाम,
वेदना मिली तुला पर तोल, उसे लोभी ने ली बेकाम।
उड रही है हृत्पथ मे धूल, आ रहे हो तुम बे-परवाह,
करूँ क्या दृग-जल से छिडकाव, बनाऊँ मै यह बिछलन राह।
सँभलते धीरे-धीरे चलो, इसी मिस तुमको लगे विलम्ब,
सफल हो जीवन की सब साध, मिले आशा को कुछ अवलम्ब।
विश्व की सुषमाओ का स्रोत, बह चलेगा आँखो की राह,
और दुर्लभ होगी पहचान, रूप-रत्नाकर भरा अथाह।

[**पर्वतेश्वर का प्रवेश**]

पर्व०—सुन्दरी अलका, तुम कब तक यहाँ रहोगी ?

अलका—यह वन्दी बनानेवाले की इच्छा पर निर्भर करता है।

पर्व०—तुम्हे कौन वन्दी कहता है ? यह तुम्हारा अन्याय है, अलका! चलो, सुसज्जित राजभवन तुम्हारी प्रत्याशा मे है।

अलका—नही पौरव, मै राजभवनो से डरती हूँ, क्योकि उनके लोभ से मनुष्य आजीवन मानसिक कारावास भोगता है।

पर्व०—इसका तात्पर्य ?

अलका—कोमल शय्या पर लेटे रहने की प्रत्याशा मे स्वतत्रता का भी विसर्जन करना पडता है, यही उन विलासपूर्ण राजभवनो का प्रलोभन है।

पर्व०—व्यग न करो अलका। पर्वतेश्वर ने जो कुछ किया है, वह भारत का एक-एक बच्चा जानता है। परन्तु दैव प्रतिकूल हो, तब क्या किया जाय ?

अलका—मै मानती हूँ, परन्तु आपकी आत्मा इसे मानने के लिए

प्रस्तुत न होगी। हम लोग जो आपके लिए, देश के लिए, प्राण देने को प्रस्तुत थे, केवल यवनो को प्रसन्न करने के लिए वन्दी किये गये !

पर्व०—वन्दी कैसे ?

अलका—वन्दी नही तो और क्या ? सिंहरण, जो आपके साथ युद्ध करते घायल हुआ है, आज तक वह क्यो रोका गया ? पचनद-नरेश, आपका न्याय अत्यन्त सुन्दर है न !

पर्व०—कौन कहता है सिंहरण वन्दी है ? उस वीर की मै प्रतिष्ठा करता हूँ अलका, परन्तु उससे द्वद्व-युद्ध किया चाहता हूँ !

अलका—क्यो ?

पर्व०—क्योकि अलका के दो प्रेमी नही जी सकते।

अलका—महाराज, यदि भूपालो का-सा व्यवहार न माँगकर आप सिकन्दर से द्वद्व-युद्ध माँगते, तो अलका को विचार करने का अवसर मिलता।

पर्व०—यदि मै सिकन्दर का विपक्षी बन जाऊँ तो तुम मुझे प्यार करोगी अलका ? सच कहो !

अलका—तव विचार करूँगी, पर वैसी सभावना नही।

पर्व०—क्या प्रमाण चाहती हो अलका ?

अलका—सिंहरण के देश पर यवनो का आक्रमण होनेवाला है, वहाँ तुम्हारी सेना, यवनो की सहायक न वने, और सिंहरण अपनी, मालव की रक्षा के लिए मुक्त किया जाय।

पर्व०—मुझे स्वीकार है।

अलका—तो मै भी राजभवन मे चलने के लिए प्रस्तुत हूँ, परन्तु एक नियम पर !

पर्व०—वह क्या ?

अलका—यही कि सिकन्दर के भारत मे रहने तक मै स्वतत्र रहूँगी। पचनद-नरेश, यह दस्यु-दल वरसाती वाढ के समान निकल जायगा, विश्वास रखिए।

पर्व०—सच कहती हो अलका! अच्छा, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, तुम जैसा कहोगी, वही होगा। सिहरण के लिए रथ आवेगा और तुम्हारे लिए शिविका। देखो भूलना मत।

[चिंतित भाव से प्रस्थान]

६

मालवो के स्कन्धावार में युद्ध-परिषद्

देवबल---परिषद् के सम्मुख मै यह विज्ञप्ति उपस्थित करता हूँ कि यवन-युद्ध के लिए जो सन्धि मालव-क्षुद्रको से हुई है, उसे सफल बनाने के लिए आवश्यक है कि दोनो गणो की एक सम्मिलित सेना बनाई जाय और उसके सेनापति क्षुद्रको के मनोनीत सेनापति मागध चन्द्रगुप्त ही हो। उन्ही की आज्ञा से सैन्य-सचालन हो।

[सिंहरण का प्रवेश---परिषद् में हर्ष]

सब---कुमार सिंहरण की जय !

नागदत्त---मगध एक साम्राज्य है। लिच्छिवि और वृजिगणतत्र को कुचलनवाले मगध का निवासी हमारी सेना का सचालन करे, यह अन्याय है। मै इसका विरोध करता हूँ।

सिंह०---मै मालव-सेना का बलाधिकृत हूँ। मुझे सेना का अधिकार परिषद् ने प्रदान किया है और साथ ही मै सन्धि-विग्रहिक का कार्य भी करता हूँ। पंचनद की परिस्थिति स्वय देख आया हूँ और मागध चन्द्रगुप्त को भी भलीभाँति जानता हूँ। मै चन्द्रगुप्त के आदेशानुसार युद्ध चलाने के लिए सहमत हूँ। और भी मेरी एक प्रार्थना है ---उत्तरापथ के विशिष्ट राजनीतिज्ञ आर्य्य चाणक्य के गम्भीर राजनीतिक विचार सुनने पर आप लोग अपना कर्तव्य निश्चित करे।

गणमुख्य---आर्य्य चाणक्य व्यासपीठ पर आवे।

चाणक्य---(व्यासपीठ से) उत्तरापथ के प्रमुख गणतत्र मालव राष्ट्र की परिषद का मै अनुगृहीत हूँ कि ऐसे गम्भीर अवसर पर मुझे कुछ कहने के लिए उसने आमत्रित किया। गणतत्र और एकराज्य का प्रश्न यहाँ नहीं, क्योकि लिच्छिवि और वृजियो का अपकार करने वाला मगध का एक-राज्य, शीघ्र ही गणतत्र मे परिवर्तित होनेवाला है। युद्ध-काल मे एक नायक की आज्ञा माननी पडती है। वहाँ शलाका ग्रहण करके शस्त्र प्रहार करना असम्भव है। अतएव सेना का एक नायक तो होना ही चाहिए।

और यहाँ की परिस्थिति मे चन्द्रगुप्त से बढ कर इस कार्य के लिए दूसरा व्यक्ति न होगा। वितस्ता-प्रदेश के अधीश्वर पर्वतेश्वर के यवनो से सन्धि करने पर भी चन्द्रगुप्त ही के उद्योग का यह फल है कि पर्वतेश्वर की सेना यवन-सहायता को न आवेगी। उसी के प्रयत्न से यवन-सेना मे विद्रोह भी हो गया है, जिससे उनका आगे बढना असम्भव हो गया है। परन्तु सिकन्दर की कूटनीति प्रत्यावर्त्तन मे भी विजय चाहती है। वह अपनी विद्रोही सेना को स्थल-मार्ग से लौटने की आज्ञा देकर नौबल के द्वारा स्वय सिन्धु-सगम तक के प्रदेश विजय करना चाहता है। उसमे मालवो का नाश निश्चित है। अतएव, सेनापतित्व के लिए आप लोग चन्द्रगुप्त को वरण करें, तो क्षुद्रको का सहयोग भी आप लोगो को मिलेगा। चन्द्रद्रगुप्त को ही उन लोगो ने भी सेनापति बनाया है।

नाग०—ऐसा नही हो सकता !

चाणक्य—प्रबल प्रतिरोध करने के लिए दोनो सैन्यो मे एकाधिपत्य होना आवश्यक है। साथ ही क्षुद्रको की सन्धि की मर्य्यादा भी रखनी चाहिए। प्रश्न शासन का नही, युद्ध का है। युद्ध मे सम्मिलित होने वाले वीरो को एकनिष्ठ होना ही लाभदायक है। फिर तो मालव और क्षुद्रक दोनो ही स्वतत्र-सघ है और रहेगे। सम्भवत इसमे प्राच्यो का एक गणराष्ट्र आगामी दिनो मे और भी आ मिलेगा।

नाग०—समझ गया, चन्द्रगुप्त को ही सम्मिलित सेना का सेनापति बनाना श्रेयस्कर होगा।

सिंह०—अन्न, पान और भैपज्य सेवा करनेवाली स्त्रियो ने मालविका को अपना प्रधान बनाने की प्रार्थना की है।

गणमुख्य—यह उन लोगो की इच्छा पर है। अस्तु, महाबलाधिकृत-पद के लिए चन्द्रगुप्त को ही वरण करने की आज्ञा परिषद देती है।

(**समवेत जयघोष**)

७

पर्वतेश्वर का प्रासाद

अलका—सिंहरण मेरी आशा देख रहा होगा और मै यहाँ पड़ी हूँ! आज इसका कुछ निवटारा करना होगा। अब अधिक नही— (**आकाश की ओर देखकर**)—तारो से भरी हुई काली रजनी का नीला आकाश—जैसे कोई विराट् गणितज्ञ निभृत मे रेखा-गणित की समस्या सिद्ध करने के लिए विन्दु दे रहा है।

[**पर्वतेश्वर का प्रवेश**]

पर्व०—अलका ! बडी द्विविधा है।

अलका—क्यो पौरव ?

पर्व०—मै तुमसे प्रतिश्रुत हो चुका हूँ कि मालव-युद्ध मे मै भाग न लूँगा, परन्तु सिकन्दर का दूत आया है कि आठ सहस्र अश्वारोही लेकर रावी-तट पर मिलो। साथ ही पता चला है, कि कुछ यवन-सेना अपने देश को लौट रही है।

अलका—(**अन्यमनस्क होकर**)—हाँ कहते चलो।

पर्व०—तुम क्या कहती हो अलका ?

अलका—मै सुनना चाहती हूँ !

पर्व०—बतलाओ, मै क्या करूँ ?

अलका—जो अच्छा समझो। मुझे देखने दो ऐसी सुन्दर वेणी—फूलों से गूँथी हुई श्यामा-रजनी की सुन्दर वेणी—अहा !

पर्व०—क्या कह रही हो ?

अलका—गाने की इच्छा होती है, सुनोगे ?

[**गाती है**]

बिखरी किरन अलक व्याकुल हो विरस वदन पर चिन्ता लेख,
छायापथ मे राह देखती गिनती प्रणय-अवधि की रेख।
प्रियतम के आगमन-पंथ मे उड न रही है कोमल धूल,
कादम्बिनी उठी यह ढँकने वाली दूर जलधि के कूल।

समय-विहग के कृष्णपक्ष मे रजत चित्र-सी अंकित कौन—
तुम हो सुन्दरि तरल तारिके ! बोलो कुछ, बैठो मत मौन !
मन्दाकिनी समीप भरी फिर प्यासी आँखे क्यो नादान।
रूप-निशा की ऊषा मे फिर कौन सुनेगा तेरा गान।

पर्व०—अलका ! मै पागल होता जा रहा हूँ। यह तुमने क्या कर दिया है !

अलका—मै तो गा रही हूँ।

पर्व०—परिहास न करो। बताओ, मै क्या करूँ ?

अलका—यदि सिकन्दर के रण-निमन्त्रण मे तुम न जाओगे तो तुम्हारा राज्य चला जायगा !

पर्व०—बडी विडम्बना है !

अलका—पराधीनता से बढकर विडम्बना और क्या है ? अब समझ गए होगे कि वह सधि नही, पराधीनता की स्वीकृति थी।

पर्व०—मै समझता हूँ कि एक हजार अश्वारोहियो को साथ लेकर वहाँ पहुँच जाऊँ, फिर कोई बहाना ढूँढ निकालूँगा।

अलका—(**मन में**) मै चलूँ, निकल भागने का ऐसा अवसर दूसरा न मिलेगा !—(**प्रकट**) अच्छी बात है, परन्तु मै भी साथ चलूँगी ! मै यहाँ अकेले क्या करूँगी ?

[**पर्वतेश्वर का प्रस्थान**]

८

रावी के तट पर सैनिकों के साथ मालविका और चन्द्रगुप्त, नदी में दूर पर कुछ नावें

माल०—मुझे शीघ्र उत्तर दीजिए ।

चन्द्र०—जैसा उचित समझो, तुम्हारी आवश्यक सामग्री तुम्हारे आधीन रहेगी । सिंहरण को कहाँ छोड़ा ?

माल०—आते ही होंगे ।

चन्द्र०—(**सैनिको से**)—तुम लोग कितनी दूर तक गए थे ?

सैनिक—अभी चार योजन तक यवनो का पता नही । परन्तु कुछ भयभीत सैनिक रावी के उस पार दिखाई दिए । मालव की पचासो हिंस्रिकाये वहाँ निरीक्षण कर रही है । उन पर धनुर्धर है ।

सिंह०—(**प्रवेश करके**)—वह पर्वतेश्वर की सेना होगी । किन्तु मागध ! आश्चर्य है ।

चन्द्र०—आश्चर्य कुछ नही ।

सिंह०—क्षुद्रको के केवल कुछ ही गुल्म आये है, और तो...

चन्द्र०—चिन्ता नही । कल्याणी के मागध सैनिक और क्षुद्रक अपनी घात मे है । यवनो को इधर आ जाने दो । सिंहरण, थोडी-सी हिंस्रिकाओं पर मुझे साहसी वीर चाहिए ।

सिंह०—प्रस्तुत हैं । आज्ञा दीजिए ।

चन्द्र०—यवनो की जलसेना पर आक्रमण करना होगा । विजय के विचार से नही, केवल उलझाने के लिए और उनकी सामग्री नष्ट करने के लिए ।

[**सिंहरण संकेत करता है, नावें जाती हैं**]

माल०—तो मै स्कन्धावार के पृष्ठ-भाग मे अपने साधन रखती हूँ । एक क्षुद्र भाण्डार मेरे उपवन मे भी रहेगा ।

चन्द्र०—(**विचार करके**)—अच्छी बात है ।

[**एक नाव तेजी से आती है, उसपर से अलका उतर पडती है**]

सिंह०—(आश्चर्य से)—तुम कैसे अलका ?

अलका—पर्वतेश्वर ने प्रतिज्ञा भग की है, वह सैनिको के साथ सिकन्दर की सहायता के लिए आया है । मालवो की नावे घूम रही थी । मै जान-बूझकर पर्वतेश्वर को छोड़कर वही पहुँच गई (हंसकर)—परन्तु मैं बन्दी आई हूँ !

चन्द्र०—देवि ! युद्धकाल है, नियमो को तो देखना ही पड़ेगा । मालविका ! ले जाओ इन्हे उपवन मे ।

[मालविका और अलका का प्रस्थान]

मालव रक्षकों के साथ एक यवन का प्रवेश

यवन—मालव के सन्धि-विग्रहिक अमात्य से मिलना चाहता हूँ ।

सिंह०—तुम दूत हो ?

यवन—हाँ !

सिंह०—कहो, मै यही हूँ ।

यवन—देवपुत्र ने आज्ञा दी है कि मालव-नेता मुझसे आकर भेट करे और मेरी जल-यात्रा की सुविधा का प्रबन्ध करे ।

सिंह०—सिकन्दर से मालवो की ऐसी कोई सन्धि नही हुई है, जिससे वे इस कार्य के लिए वाध्य हो । हाँ, भेंट करने के लिए मालव सदैव प्रस्तुत है—चाहे सन्धि-परिषद् में या रणभूमि में !

यवन—तो यही जाकर कह दूँ ?

सिंह०—हाँ, जाओ—(**रक्षकों से**)—इन्हे सीमा तक पहुँचा दो ।

[यवन का रक्षकों के साथ प्रस्थान]

चन्द्रगुप्त—मालव, हम लोगो ने भयानक दायित्व उठाया है, इसका निर्वाह करना होगा ।

सिंह०—जीवन-मरण से खेलते हुए करेगे वीरवर !

चन्द्र०—परन्तु सुना तो, यवन लोग आर्य्यों की रण-नीति से नही लडते । वे हमी लोगो के युद्ध है, जिनमे रणभूमि के पास ही कृषक स्वच्छन्दता से हल चलाता है । यवन आतक फैलाना जानते है और

उसे अपनी रण-नीति का प्रधान अग मानते हैं। निरीह साधारण प्रजा को लूटना, गाँवो को जलाना, उनके भीषण परन्तु साधारण कार्य्य हैं।

सिंह०--युद्ध-सीमा के पार के लोगो को भिन्न दुर्गों में एकत्र होने की आज्ञा प्रचारित हो गई है। जो होगा, देखा जायगा।

चन्द्र०--पर एक वात सदैव ध्यान में रखनी होगी।

सिंह०--क्या ?

चन्द्र०--यही, कि हमे आक्रमणकारी यवनो को यहाँ से हटाना है, और उन्हे जिस प्रकार हो, भारतीय सीमा के वाहर करना है। इसलिए शत्रु की नीति से युद्ध करना होगा।

सिंह०--सेनापति की सब आज्ञाएँ मानी जायँगी, चलिये !

[सब का प्रस्थान]

शिविर के समीप कल्याणी और चाणक्य

कल्याणी—आर्य्य, अब मुझे लौटने की आज्ञा दीजिए, क्योकि सिकन्दर ने विपाशा को अपने आक्रमण की सीमा बना ली है। अग्रसर होने की सम्भावना नही, और अमात्य राक्षस आ भी गये है, उनके साथ मेरा जाना ही उचित है।

चाणक्य—और चन्द्रगुप्त से क्या कह दिया जाय?

कल्याणी—मै नही जानती।

चाणक्य—परन्तु राजकुमारी, उसका असीम प्रेमपूर्ण हृदय भग्न हो जायगा। वह बिना पतवार की नौका के सदृश इधर-उधर बहेगा।

कल्याणी—आर्य्य, मै इन बातो को नही सुनना चाहती, क्योकि समय ने मुझे अव्यवस्थित बना दिया है।

[**अमात्य राक्षस का प्रवेश**]

राक्षस—कौन? चाणक्य?

चाणक्य—हाँ अमात्य! राजकुमारी मगध लौटना चाहती है।

राक्षस—तो उन्हे कौन रोक सकता है?

चाणक्य—क्यो? तुम रोकोगे।

राक्षस—क्या तुमने सब को मूर्ख समझ लिया है?

चाणक्य—जो होगे वे अवश्य समझे जायँगे। अमात्य! मगध की रक्षा अभीष्ट नही है क्या?

राक्षस—मगध विपन्न कहाँ है?

चाणक्य—तो मै क्षुद्रको से कह दूँ कि तुम लोग बाधा न दो, और यवनो से भी यह कह दिया जाय कि वास्तव मे यह स्कन्धावार प्राच्य देश के सम्राट् का नही है, जिससे भयभीत होकर तुम विपाशा पार होना नही चाहते, यह तो क्षुद्रको की क्षुद्र सेना है, जो तुम्हारे लिए मगध तक पहुँचने का सरल पथ छोड देने को प्रस्तुत है—क्यो?

राक्षस—(विचार कर)—आह ब्राह्मण, मैं स्वय रहूँगा, यह तो मान लेने योग्य सम्मति है। परन्तु—

चाणक्य—फिर परन्तु लगाया। तुम स्वयं रहो और राजकुमारी भी रहे। और तुम्हारे साथ जो नवीन गुल्म आये है, उन्हे भी रखना पडेगा। जव सिकन्दर रावी के अन्तिम छोर पर पहुँचेगा, तव तुम्हारी सेना का काम पडेगा। राक्षस! फिर भी मगध पर मेरा स्नेह है। मै उसे उजडने और हत्याओ से वचाना चाहता हूँ।

[**प्रस्थान**]

कल्याणी—क्या इच्छा है अमात्य ?

राक्षस—मै इसका मुँह भी नही देखना चाहता। पर इसकी वातें मानने के लिए विवश हो रहा हूँ। राजकुमारी! यह मगध का विद्रोही अव तक वन्दी कर लिया जाता, यदि इसकी स्वतंत्रता की आवश्यकता न होती।

कल्याणी—जैसी सम्मति हो।

[**चाणक्य का पुनः प्रवेश**]

चाणक्य—अमात्य! सिह पिजडे मे वन्द हो गया है!

राक्षस—कैसे ?

चाणक्य—जल-यात्रा में इतना विघ्न उपस्थित हुआ कि सिकन्दर को स्थल-मार्ग से मालवों पर आक्रमण करना पडा। अपनी विजयों पर फूल कर उसने ऐसा किया, परन्तु जा फँसा उनके चगुल मे। अव इधर क्षुद्रको और मागधो की नवीन सेनाओ से उनको वाधा पहुँचानी होगी।

राक्षस—तव तुम क्या कहते हो ? क्या चाहते हो ?

चाणक्य—यही, कि तुम अपनी सम्पूर्ण सेना लेकर विपाशा के तट की रक्षा करो, और क्षुद्रको को लेकर मैं पीछे से आक्रमण करने जाता हूँ। इसमें तो डरने की वात कोई नही ?

राक्षस—मैं स्वीकार करता हूँ।

चाणक्य—यदि न करोगे तो अपना ही अनिष्ट करोगे ।

[**प्रस्थान**]

कल्याणी—विचित्र ब्राह्मण है अमात्य ! मुझे तो इसको देखकर डर लगता है ।

राक्षस—विकट है ! राजकुमारी, एक बार इससे मेरा द्वंद्व होना अनिवार्य्य है, परन्तु अभी मैं उसे बचाना चाहता हूँ ।

कल्याणी—चलिए ।

[**कल्याणी का प्रस्थान**]

चाणक्य—(**पुनः प्रवेश करके**)—राक्षस, एक बात तुम्हारे कल्याण की है, सुनोगे ? मैं कहना भूल गया था ।

राक्षस—क्या ?

चाणक्य—नन्द को अपनी प्रेमिका सुवासिनी से तुम्हारे अनुचित सम्बन्ध का विश्वास हो गया है । अभी तुम्हारा मगध लौटना ठीक न होगा । समझे !

[**चाणक्य का सवेग प्रस्थान, राक्षस सिर पकड़ कर बैठ जाता है**]

१०

मालव-दुर्ग का भीतरी भाग, एक शून्य परकोटा

मालविका—अलका, इधर तो कोई भी सैनिक नही है ! यदि शत्रु इधर से आवे तव ?

अलका—दुर्ग ध्वस करने के लिए यत्र लगाए जा चुके है, परन्तु मालव-सेना अभी सुख की नीद सो रही है । सिंहरण को दुर्ग की भीतरी रक्षा का भार देकर चन्द्रगुप्त नदी-तट से यवन-सेना के पृष्ठभाग पर आक्रमण करेंगे । आज ही युद्ध का अन्तिम निर्णय है । जिस स्थान पर यवन-सेना को ले आना अभीष्ट था, वहाँ तक पहुँच गई है ।

माल०—अच्छा, चलो, कुछ नवीन आहत आ गए है, उनकी सेवा का प्रवन्ध करना है ।

अलका—(**देखकर**) मालविका ! मेरे पास धनुप है और कटार है । इस आपत्ति-काल मे एक आयुव अपने पास रखना चाहिए । तू कटार अपने पास रख ले ।

माल०—मै डरती हूँ, घृणा करती हूँ । रक्त की प्यासी छुरी अलग करो अलका, मैंने सेवा-व्रत लिया है ।

अलका—प्राणो के भय से शस्त्र से घृणा करती हो क्या ?

माल०—प्राण तो धरोहर है, जिसका होगा वही लेगा, मुझे भय से इसकी रक्षा करने की आवश्यकता नही । मै जाती हूँ ।

अलका—अच्छी वात है, जा । परन्तु सिंहरण को शीघ्र ही भेज दे। यहाँ जव तक कोई न आ जाय, मै नही हट सकती ।

[**मालविका का प्रस्थान**]

अलका—सन्ध्या का नीरव निर्जन प्रदेश है । बैठूँ । (**अकस्मात् बाहर से हल्ला होता है, युद्ध-शब्द**) क्या चन्द्रगुप्त ने आक्रमण कर दिया ? परन्तु यह स्थान........वडा ही अरक्षित है ।—(**उठती है**) अरे ! वह कौन है ? कोई यवन सैनिक है क्या ? तो सावधान हो जाऊँ ।

[**धनुष चढा कर तीर मारती है । यवन सैनिक का पतन । दूसरा**

फिर ऊपर आता है, उसे भी मारती है, तीसरे बार स्वयं सिकन्दर ऊपर आता है। तीर का वार बचा कर दुर्ग में कूदता है और अलका को पकड़ना चाहता है। सहसा सिंहरण का प्रवेश ; युद्ध]

सिंह०—(तलवार चलाते हुए) तुमको स्वय इतना साहस नही करना चाहिए सिकन्दर ! तुम्हारा प्राण बहुमूल्य है।

सिकन्दर—सिकन्दर केवल सेनाओ को आज्ञा देना नही जानता। बचाओ अपने को ! (भाले का वार)

[सिंहरण इस फुरती से बरछे को ढाल पर लेता है कि वह सिकन्दर के हाथ से छूट जाता है। यवनराज विवश होकर तलवार चलाता है ; किन्तु सिंहरण के भयानक प्रात्याघात से घायल होकर गिरता है। तीन यवन-सैनिक कूद कर आते हैं, इधर से मालव सैनिक पहुँचते है ।]

सिंह०—यवन ! दुस्साहस न करो ! तुम्हारे सम्राट् की अवस्था शोचनीय है, ले जाओ, इनकी शुश्रूषा करो !

यवन—दुर्ग-द्वार टूटता है और अभी हमारे वीर सैनिक इस दुर्ग को मटियामेट करते हैं।

सिंह०—पीछे चन्द्रगुप्त की सेना है मूर्ख ! इस दुर्ग मे आकर तुम सब बन्दी होगे। ले जाओ, सिकन्दर को उठा ले जाओ, जब तक और मालवो को यह न विदित हो जाय कि यही वह सिकन्दर है।

मालव सैनिक—सेनापति, रक्त का बदला ! इस नृशस ने निरीह जनता का अकारण वध किया है ! प्रतिशोध ?

सिंह०—ठहरो, मालव वीरो ! ठहरो। यह भी एक प्रतिशोध है। यह भारत के ऊपर एक ऋण था, पर्वतेश्वर के प्रति उदारता दिखाने का यह प्रत्युत्तर है। यवन ! जाओ, शीघ्र जाओ !

[तीनो यवन सिकन्दर को लेकर जाते हैं, घबराया हुआ एक सैनिक आता है]

सिंह०—क्या है ?

सैनिक—दुर्ग-द्वार टूट गया, यवन सेना भीतर आ रही है।

सिंह०—कुछ चिन्ता नहीं। दृढ रहो। समस्त मालव-सेना से कह दो कि सिंहरण तुम्हारे साथ मरेगा। (**अलका से**) तुम मालविका को साथ लेकर अन्तःपुर की स्त्रियों को भूगर्भ-द्वार से रक्षित स्थान पर ले जाओ। अलका! मालव के ध्वंस पर ही आर्यों का यशोमन्दिर ऊँचा खड़ा हो सकेगा। जाओ!

[अलका का प्रस्थान। यवन सैनिकों का प्रवेश, दूसरी ओर से चन्द्रगुप्त का प्रवेश और युद्ध। एक यवन सैनिक दौड़ा हुआ आता है।]

यवन—सेनापति सिल्यूकस! क्षुद्रकों की सेना भी पीछे आ गई है! बाहर की सेना को उन लोगों ने उलझा रक्खा है।

चन्द्रगुप्त—यवन सेनापति, मार्ग चाहते हो या युद्ध? मुझ पर कृतज्ञता का बोझ है। तुम्हारा जीवन!

सिल्यू०—(**कुछ सोचने लगता है**) हम दोनों के लिए प्रस्तुत हैं! किन्तु..............

चन्द्र०—शान्ति! मार्ग दो! जाओ सेनापति! सिकन्दर का जीवन बच जाय तो फिर आक्रमण करना।

[यवन-सेना का प्रस्थान। चन्द्रगुप्त का जय-घोष]

तृतीय अंक

१

विपाशा-तट का शिविर......राक्षस टहलता हुआ

राक्षस—एक दिन चाणक्य ने कहा था कि आक्रमणकारी यवन, ब्राह्मण और बौद्धो का भेद न मानेगे। वही बात ठीक उतरी। यदि मालव और क्षुद्रक परास्त हो जाते और यवन सेना शतद्रु पार कर जाती, तो मगध का नाश निश्चित था। मूर्ख मगध-नरेश ने सदेह किया है और बार-बार मेरे लौट आने की आज्ञाएँ आने लगी है! परन्तु....

[**एक चर प्रवेश करके प्रणाम करता है**]

राक्षस—क्या समाचार है ?

चर—बडा ही आतकजनक है अमात्य !

राक्षस—कुछ कहो भी।

चर—सुवासिनी पर आपसे मिलकर कुचक्र रचने का अभियोग है, वह कारागार में है।

राक्षस—(**क्रोध से**)—और भी कुछ ?

चर—हाँ अमात्य, प्रान्त-दुर्ग पर अधिकार करके विद्रोह करने के अपराध मे आप को बन्दी बनाकर ले आने वाले के लिए पुरस्कार की घोषणा की गई है।

राक्षस—यहाँ तक ! तुम सत्य कहते हो ?

चर—मै तो यहॉ तक कहने के लिए प्रस्तुत हूँ कि अपने बचने का शीघ्र उपाय कीजिए।

राक्षस—भूल थी ! मेरी भूल थी ! मूर्ख राक्षस ! मगध की रक्षा करने चला था ! जाता मगध, कटती प्रजा, लुटते नगर ! नन्द ! क्रूरता

और मूर्खता की प्रतिमूर्ति नन्द ! एक पशु ! उसके लिए क्या चिन्ता थी ! सुवासिनी ! मै सुवासिनी के लिए मगध को वचाना चाहता था ! कुटिल विश्वघातिनी राज-सेवा ! तुझे धिक्कार है !

[**एक नायक का सैनिको के साथ प्रवेश**]

नायक—अमात्य राक्षस, मगध-सम्राट् की आज्ञा से शस्त्र त्याग कीजिए। आप वन्दी है।

राक्षस—(**खड्ग खींच कर**)—कौन है तू मूर्ख ! इतना साहस !

नायक—यह तो वन्दीगृह वतावेगा ! वल-प्रयोग करने के लिए मै वाध्य हूँ !—(**सैनिकों से**)—अच्छा ! बाँध लो।

[**दूसरी ओर से आठ सैनिक आकर उन पहले के सैनिको को वन्दी वनाते है। राक्षस आश्चर्य-चकित होकर देखता है।**]

नायक—तुम सव कौन हो ?

नवागत सैनिक—राक्षस के शरीर-रक्षक !

राक्षस—मेरे !

नवागत—हाँ अमात्य ! आर्य चाणक्य ने आज्ञा दी है कि जव तक यवनो का उपद्रव है तव तक सव की रक्षा होनी चाहिए, भले ही वह राक्षस क्यो न हो।

राक्षस—इसके लिए मै चाणक्य का कृतज्ञ हूँ।

नवागत—परन्तु अमात्य ! कृतज्ञता प्रकट करने के लिए आप को उनके समीप तक चलना होगा।

[**सैनिको को संकेत करता है, वन्दियो को लेकर चले जाते है**]

राक्षस—मुझे कहाँ चलना होगा ? राजकुमारी से शिविर मे भेंट कर लूँगा।

नवागत—वही सवसे भेंट होगी। यह पत्र है।

[**राक्षस पत्र लेकर पढ़ता है**]

राक्षस—अलका का सिंहरण से व्याह होने वाला है, उसमे मै भी निमन्त्रित किया गया हूँ ! चाणक्य विलक्षण वुद्धि का ब्राह्मण है, उसकी

प्रखर प्रतिभा कूट राजनीति के साथ दिन रात जैसे खिलवाड किया करती है।

नवागत—हॉ, आपने और भी कुछ सुना है ?

राक्षस—क्या ?

नवागत—यवनो ने मालवो से सन्धि करने का सदेश भेजा है। सिकन्दर ने उस वीर रमणी अलका को देखने की बडी इच्छा प्रकट की है, जिसने दुर्ग मे सिकन्दर का प्रतिरोध किया था!

राक्षस—आश्चर्य !

चर—हाँ अमात्य! यह तो मै कहने ही नही पाया था। रावी-तट पर एक विस्तृत शिविरो की रग-भूमि बनी है, जिसमे अलका का ब्याह होगा। जब से सिकन्दर को यह विदित हुआ है कि अलका तक्षशिला-नरेश आम्भीक की बहन है, तब से उसे एक अच्छा अवसर मिल गया है। उसने उक्त शुभ अवसर पर मालवो और यवनो का एक सम्मिलित उत्सव करने की घोषणा कर दी है। आम्भीक के पक्ष से स्वय निमत्रित होकर, परिणय-सपादन कराने, दल-बल के साथ सिकन्दर भी आवेगा।

राक्षस—चाणक्य ! तू धन्य है ! मुझे ईर्ष्या होती है। चलो।

[**सब जाते हैं**]

२

रावी-तट के उत्सव-शिविर का एक पथ। पर्वतेश्वर अकेले टहलते हुए

पर्व०—आह! कैसा अपमान! जिस पर्वतेश्वर ने उत्तरापथ में अनेक प्रबल शत्रुओं के रहते भी विरोधों को कुचल कर गर्व से सिर ऊँचा कर रक्खा था, जिसने दुर्दान्त सिकन्दर के सामने मरण को तुच्छ समझते हुए, वक्ष ऊँचा करके भाग्य से हँसी-ठट्ठा किया था, उसी का यह तिरस्कार—सो भी एक स्त्री के द्वारा! और सिकन्दर के संकेत से! प्रतिशोध! रक्त-पिशाची प्रतिहिंसा अपने दाँतों से नसों को नोच रही है! मरूँ या मार डालूँ? मारना तो असम्भव है। सिंहरण और अलका, वर-वधू-वेश में है, मालवों के चुने हुए वीरों से वे घिरे हैं। सिकन्दर उनकी प्रशंसा और आदर में लगा है। इस समय सिंहरण पर हाथ उठाना असफलता के पैरों-तले गिरना है। तो फिर जीकर क्या करूँ?

[छुरा निकाल कर आत्महत्या करना चाहता है, चाणक्य आकर हाथ पकड़ लेता है]

पर्वतेश्वर—कौन?

चाणक्य—ब्राह्मण चाणक्य।

पर्व०—इस मेरे अन्तिम समय में भी क्या कुछ दान चाहते हो?

चाणक्य—हाँ!

पर्व०—मैंने अपना राज्य दिया, अब हटो।

चाणक्य—यह तो तुमने दे दिया, परन्तु इसे मैंने तुमसे माँगा न था पौरव!

पर्व०—फिर क्या चाहते हो?

चाणक्य—एक प्रश्न का उत्तर।

पर्व०—तुम अपनी बात मुझे स्मरण दिलाने आये हो? तो ठीक है। ब्राह्मण! तुम्हारी बात सच हुई। यवनों ने आर्यावर्त्त को पददलित कर लिया। मैं गर्व में भूला था, तुम्हारी बात न मानी। अब उसी का प्रायश्चित्त करने जाता हूँ! छोड़ दो!

चाणक्य--पौरव ! शान्त हो। मै एक दूसरी बात पूछता हूँ। वृषल चन्द्रगुप्त क्षत्रिय है कि नही, अथवा उसे मूर्धाभिषिक्त करने मे ब्राह्मण से भूल हुई ?

पर्व०--आह, ब्राह्मण ! व्यग्य न करो। चन्द्रगुप्त के क्षत्रिय होने का प्रमाण यही विराट् आयोजन है। आर्य्य चाणक्य ! मै क्षमता रखते हुए जिस कार्य्य को न कर सका, वह कार्य्य निस्सहाय चन्द्रगुप्त ने किया। आर्य्यावर्त्त से यवनो को निकल जाने का सकेत उसके प्रचुर बल का द्योतक है। मै विश्वस्त हृदय से कहता हूँ कि चन्द्रगुप्त आर्य्यावर्त्त का एकच्छत्र सम्राट् होने के उपयुक्त है। अब मुझे छोड दो. ....

चाणक्य--पौरव ! ब्राह्मण राज्य करना नही जानता, करना भी नही चाहता, हाँ, वह राजाओ का नियमन करना जानता है ; राजा बनाना जानता है। इसलिए तुम्हे अभी राज्य करना होगा, और करना होगा वह कार्य्य--जिसमे भारतीयो का गौरव हो और तुम्हारे क्षात्रधर्म का पालन हो।

पर्व०--(**छुरा फेंक कर**)--वह क्या काम है ?

चाणक्य--जिन यवनो ने तुमको लाञ्छित और अपमानित किया है, उनसे प्रतिशोध !

पर्व०--असम्भव है !

चाणक्य--(**हँस कर**)--मनुष्य अपनी दुर्बलता से भलीभाँति परिचित रहता है। परन्तु उसे अपने बल से भी अवगत होना चाहिए। असम्भव कहकर किसी काम को करने के पहले कर्मक्षेत्र मे काँपकर लडखडाओ मत पौरव ! तुम क्या हो--विचार कर देखो तो ! सिकन्दर ने जो क्षत्रप नियुक्त किया है, जिन सन्धियो को वह प्रगतिशील रखना चाहता है, वे सब क्या है ? अपनी लूट-पाट को वह साम्राज्य के रूप में देखना चाहता है ! चाणक्य जीते-जी यह नही होने देगा ! तुम राज्य करो !

पर्व०--परन्तु आर्य्य, मैंने राज्य दान कर दिया है !

चाणक्य—पौरव, तामस त्याग से सात्त्विक ग्रहण उत्तम है। वह दान न था, उसमे कोई सत्य नही। तुम उसे ग्रहण करो।

पर्व०—तो क्या आज्ञा है ?

चाणक्य—पीछे बतलाऊँगा। इस समय मुझे केवल यही कहना है कि सिंहरण को अपना भाई समझो और अलका को बहन।

[वृद्ध गांधार-राज का सहसा प्रवेश]

वृद्ध०—अलका कहाँ है, अलका ?

पर्व०—कौन हो तुम वृद्ध ?

चाणक्य—मै इन्हे जानता हूँ—वृद्ध गांधार-नरेश !

पर्व०—आर्य्य, मै पर्व्वतेश्वर प्रणाम करता हूँ।

वृद्ध०—मै प्रणाम करने योग्य नही, पौरव ! मेरी सन्तान से देश का बडा अनिष्ट हुआ है। आम्भीक ने लज्जा की यवनिका मे मुझे छिपा दिया है। इस देशद्रोही के प्राण केवल अलका को देखने के लिए बचे है, उसी से कुछ आशा थी। जिसको मोल लेने मे लोभ असमर्थ था, उसी अलका को देखना चाहता हूँ और प्राण दे देना चाहता हूँ !— **(हांफता है)**

चाणक्य—क्षत्रिय ! तुम्हारे पाप और पुण्य दोनो जीवित है। स्वस्तिमती अलका आज सौभाग्यवती होने जा रही है, चलो कन्या-सम्प्रदान करके प्रसन्न हो जाओ।

[चाणक्य वृद्ध गांधार-नरेश को लिवा जाता है]

पर्व०—जाऊँ ? किधर जाऊँ ? चाणक्य के पीछे ?—**(जाता है)**

[कार्नेलिया और चन्द्रगुप्त का प्रवेश]

चन्द्र०—कुमारी, आज मुझे बडी प्रसन्नता हुई !

कार्ने०—किस बात की ?

चन्द्र०—कि मै विस्मृत नही हुआ।

कार्ने०—स्मृति कोई अच्छी वस्तु है क्या ?

चन्द्र०—स्मृति जीवन का पुरस्कार है सुन्दरी !

कार्ने०—परन्तु मै कितने दूर देश की हूँ। स्मृतियाँ ऐसे अवसर पर उदण्ड हो जाती है। अतीत के कारागृह मे वन्दिनी स्मृतियाँ अपने करुण निश्वास की शृखलाओ को झनझनाकर सूचीभेद्य अन्धकार मे सो जाती है।

चन्द्र०—ऐसा हो तो भूल जाओ शुभे! इस केन्द्रच्युत जलते हुए उल्कापिंड की कोई कक्षा नही। निर्वासित, अपमानित प्राणो की चिन्ता क्या?

कार्ने०—नही चन्द्रगुप्त, मुझे इस देश से जन्मभूमि के समान स्नेह होता जा रहा है। यहाँ के श्यामल कुज, घने जगल, सरिताओ की माला पहने हुए शैल-श्रेणी, हरी-भरी वर्षा, गर्मी की चाँदनी, शीत-काल की धूप, और भोले कृषक तथा सरल कृषक-बालिकाये, बाल्य-काल की सुनी हुई कहानियो की जीवित प्रतिमाएँ है। यह स्वप्नो का देश, यह त्याग और ज्ञान का पालना, यह प्रेम की रगभूमि—भारतभूमि क्या भुलाई जा सकती है? कदापि नही। अन्य देश मनुष्यो की जन्मभूमि है, यह भारत मानवता की जन्मभूमि है।

चन्द्र०—शुभे, मै यह सुनकर चकित हो गया हूँ।

कार्ने०—और मै मर्म्माहत हो गई हूँ चन्द्रगुप्त, मुझे पूर्ण विश्वास था कि यहाँ के क्षत्रप पिताजी नियुक्त होगे और मै अलेग्जेद्रिया मे समीप ही रहकर भारत को देख सकूँगी। परन्तु वैसा न हुआ, सम्राट् ने फिलिप्स को यहाँ का शासक नियुक्त कर दिया है।

[अकस्मात् फिलिप्स का प्रवेश]

फिलि०—तो बुरा क्या है कुमारी! सिल्यूकस के क्षत्रप न होने पर भी कार्नेलिया यहाँ की शासक हो सकती है। फिलिप्स अनुचर होगा—(देखकर)—फिर वही भारतीय युवक!

चन्द्र०—सावधान! यवन! हम लोग एक बार एक-दूसरे की परीक्षा ले चुके है।

फिलि०—उँह! तुमसे मेरा सम्बन्ध ही क्या है, परन्तु ..

कार्ने०—और मुझसे भी नही, फिलिप्स ! मैं चाहती हूँ कि तुम मुझसे न बोलो !

फिलि०—अच्छी बात है। किन्तु मैं चन्द्रगुप्त को भी तुमसे बातें करते हुए नहीं देख सकता। तुम्हारे प्रेम का....

कार्ने०—चुप रहो, मैं कहती हूँ चुप रहो !

फिलि०—(चन्द्रगुप्त से) मैं तुमसे द्वन्द्व-युद्ध किया चाहता हूँ।

चन्द्र०—जब इच्छा हो, मैं प्रस्तुत हूँ। और सन्धि भग करने के लिये तुम्ही अग्रसर होगे, यह अच्छी बात होगी।

फिलि०—सन्धि राष्ट्र की है। यह मेरी व्यक्तिगत बात है। अच्छा, फिर कभी मैं तुम्हे आह्वान करूँगा।

चन्द्र०—आधी रात, पिछले पहर, जब तुम्हारी इच्छा हो !

[फिलिप्स का प्रस्थान]

कार्ने०—सिकन्दर ने भारत से युद्ध किया है और मैंने भारत का अध्ययन किया है। मैं देखती हूँ कि यह युद्ध ग्रीक और भारतीयो के अस्त्र का ही नहीं इसमे दो बुद्धियाँ भी लड़ रही हैं। यह अरस्तू और चाणक्य की चोट है, सिकन्दर और चन्द्रगुप्त उनके अस्त्र है।

चन्द्र०—मैं क्या कहूँ, मैं एक निर्वासित—

कार्ने०—लोग चाहे जो कहे, मैं भलीभाँति जानती हूँ कि अभी तक चाणक्य की विजय है। पिताजी से और मुझ से इस विषय पर अच्छा विवाद होता है। वे अरस्तू के शिष्यो मे है।

चन्द्र०—भविष्य के गर्भ मे अभी बहुत-से रहस्य छिपे है।

कार्ने०—अच्छा, तो मैं जाती हूँ और फिर एक बार अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ। किन्तु मुझे विश्वास है कि मैं पुन. लौट कर आऊँगी।

चन्द्र०—उस समय भी मुझे भूलने की चेष्टा करोगी ?

कार्ने०—नही। चन्द्रगुप्त ! विदा,—यवन-बेड़ा आज ही जायगा।

[दोनो एक-दूसरे की ओर देखते हुए जाते हैं—राक्षस और कल्याणी का प्रवेश]

कल्याणी---ऐसा विराट् दृश्य तो मैंने नही देखा था अमात्य! मगध को किस बात का गर्व है ?

राक्षस---गर्व है राजकुमारी ! और उसका गर्व सत्य है। चाणक्य और चन्द्रगुप्त मगध की ही प्रजा है, जिन्होने इतना बडा उलट-फेर किया है ?

[**चाणक्य का प्रवेश**]

चाणक्य---तो तुम इसे स्वीकार करते हो अमात्य राक्षस ?

राक्षस---शत्रु की उचित प्रशसा करना मनुष्य का धर्म्म है। तुमने अद्भुत कार्य्य किये, इसमे भी कोई सन्देह है ?

चाणक्य---अस्तु, अब तुम जा सकते हो। मगध तुम्हारा स्वागत करेगा।

राक्षस---राजकुमारी तो कल चली जायँगी। पर, मैंने अभी तक निश्चय नही किया है।

चाणक्य---मेरा कार्य्य हो गया, राजकुमारी जा सकती है। परन्तु एक बात कहूँ ?

राक्षस---क्या ?

चणक्य---यहाँ की कोई बात नन्द से न कहने की प्रतिज्ञा करनी होगी।

कल्याणी---मै प्रतिश्रुत होती हूँ।

चाणक्य---राक्षस, मै सुवासिनी से तुम्हारी भेट भी करा देता, परन्तु वह मुझ पर विश्वास नही कर सकती।

राक्षस---क्या वह भी यही है ?

चाणक्य---कही होगी, तुम्हारा प्रत्यय देखकर वह आ सकती है।

राक्षस---यह लो मेरी अगुलीय मुद्रा। चाणक्य ! सुवासिनी को कारागार से मुक्त करा कर मुझसे भेंट करा दो।

चाणक्य---(**मुद्रा लेकर**)---मै चेष्टा करूँगा।

[**प्रस्थान**]

राक्षस--तो राजकुमारी, प्रणाम !

कल्याणी--तुमने अपना कर्तव्य भली-भाँति सोच लिया होगा। मैं जाती हूँ, और विश्वास दिलाती हूँ कि मुझसे तुम्हारा अनिष्ट न होगा।

[दोनों का प्रस्थान]

रावी का तट—सिकन्दर का बेड़ा प्रस्तुत है; चाणक्य और पर्वतेश्वर

चाणक्य—पौरव, देखो वह नृशसता की बाढ आज उतर जायगी। चाणक्य ने जो किया, वह भला था या बुरा, अब समझ मे आवेगा।

पर्व०—मै मानता हूँ, यह आप ही का स्तुत्य कार्य्य है।

चाणक्य—और चन्द्रगुप्त के बाहुबल का, पौरव! आज फिर मैं उसी बात को दुहराना चाहता हूँ। अत्याचारी नन्द के हाथो से मगध का उद्धार करने के लिए चाणक्य ने तुम्ही से पहले सहायता माँगी थी और अब तुम्ही से लेगा भी, अब तो तुम्हे विश्वास होगा?

पर्व०—मै प्रस्तुत हूँ आर्य्य!

चाणक्य—मै विश्वस्त हुआ। अच्छा, यवनो को आज विदा करना है।

[एक ओर से सिकन्दर, सिल्यूकस, कार्नेलिया, फिलिप्स इत्यादि; और दूसरी ओर से चन्द्रगुप्त, सिंहरण, अलका, मालविका और आम्भीक इत्यादि का यवन और भारतीय रणवाद्यों के साथ प्रवेश]

सिक०—सेनापति चन्द्रगुप्त! बधाई है!

चन्द्र०—किस बात की राजन्!

सिक०—जिस समय तुम भारत के सम्राट् होगे, उस समय उपस्थित न रह सकूँगा, उसके लिए पहले से बधाई है। मुझे उस नग्न ब्राह्मण दाण्डचायन की बातो का पूर्ण विश्वास हो गया।

चन्द्र०—आप वीर है।

सिक०—आर्य्य वीर! मैंने भारत मे हरक्यूलिस, एचिलिस की आत्माओ को भी देखा और देखा डिमास्थनीज को। सभवत प्लेटो और अरस्तू भी होगे। मै भारत का अभिनन्दन करता हूँ।

सिल्यू०—सम्राट्। यही आर्य्य चाणक्य है।

सिक०—धन्य है आप, मै तलवार खीचे हुए भारत मे आया, हृदय देकर जाता हूँ। विस्मय-विमुग्ध हूँ। जिनसे खड्ग-परीक्षा हुई थी, युद्ध

मे जिनसे तलवारे मिली थी, उनसे हाथ मिला कर—मैत्री के हाथ मिला कर जाना चाहता हूँ।

चाणक्य—हम लोग प्रस्तुत है सिकन्दर ! तुम वीर हो, भारतीय सदैव उत्तम गुणो की पूजा करते है। तुम्हारी जल-यात्रा मंगलमय हो। हम लोग युद्ध करना जानते है, द्वेष नही।

[सिकन्दर हंसता हुआ अनुचरों के साथ नौका पर आरोहण करता है, नाव चलती है]

४

पथ में चर और राक्षस

चर—छल ! प्रवञ्चना !! विश्वासघात !!!

राक्षस—क्या है, कुछ सुनूँ भी !

चर—मगध से आज मेरा सखा कुरग आया है, उससे यह मालूम हुआ है कि महाराज नन्द का कुछ भी क्रोध आपके ऊपर नही, वह आप के शीघ्र मगध लौटने के लिए उत्सुक है।

राक्षस—और सुवासिनी ?

चर—सुवासिनी सुखी और स्वतत्र है। मुझे चाणक्य के चर से वह धोखा हुआ था, जब मैंने आपसे वहाँ का समाचार कहा था।

राक्षस—तब क्या मै कुचक्र मे डाला गया हूँ ?—(**विचार कर**) चाणक्य की चाल है। ओह, मै समझ गया। मुझे अभी निकल भागना चाहिये। सुवासिनी पर भी कोई अत्याचार मेरी मुद्रा दिखा कर न किया जा सके, इसके लिए मुझे शीघ्र मगध पहुँचना चाहिये।

चर—क्या आपने मुद्रा भी दे दी है ?

राक्षस—मेरी मूर्खता। चाणक्य, मगध मे विद्रोह कराना चाहता है।

चर—अभी हम लोगो को मगध-गुल्म मार्ग मे मिल जायगा, चाणक्य से बचने के लिये उसका आश्रय अच्छा होगा। दो तीव्रगामी अश्व मेरे अधिकार मे है, शीघ्रता कीजिये।

राक्षस—तो चलो ! मै चाणक्य के हाथो का कठपुतला बन कर मगध का नाश नही करा सकता।

[**दोनों का प्रस्थान—अलका और सिंहरण का प्रवेश**]

सिंह०—देवी ! पर इसका उपाय क्या है ?

अलका—उपाय जो कुछ हो, मित्र के कार्य्य मे तुमको सहायता करनी ही चाहिये। चन्द्रगुप्त आज कह रहे थे कि 'मगध जाऊँगा। देखूँ पर्वतेश्वर क्या करते है।'

सिंह०—चन्द्रगुप्त के लिए यह प्राण अर्पित है अलके, मालव कृतघ्न नहीं होते। देखो, चन्द्रगुप्त और चाणक्य आ रहे है।

अलका—और उधर से पर्वतेश्वर भी।

[चन्द्रगुप्त, चाणक्य और पर्वतेश्वर का प्रवेश]

सिंह०—मित्र! अभी कुछ दिन और ठहर जाते तो अच्छा था; अथवा जैसी गुरुदेव की आज्ञा।

चाणक्य—पर्वतेश्वर, तुमने मुझसे प्रतिज्ञा की है!

पर्व०—मै प्रस्तुत हूँ, आर्य्य!

चाणक्य—अच्छा तो तुम्हे मेरे साथ चलना होगा। सिंहरण मालव गणराष्ट्र का व्यक्ति है, वह अपनी शक्ति भर प्रयत्न कर सकता है; किन्तु सहायता विना परिषद् की अनुमति लिये असम्भव है। मै परिषद् के सामने अपना भेद खोलना नही चाहता। इसलिए पौरव, सहायता केवल तुम्हे करनी होगी। मालव अपने शरीर और खड्ग का स्वामी है, वह मेरे लिए प्रस्तुत है। मगध का अधिकार प्राप्त होने पर जैसा कहोगे......

पर्व०—मै कह चुका हूँ आर्य्य चाणक्य! इस शरीर मे या धन में, विभव मे या अधिकार मे, मेरी स्पृहा नही रह गई। मेरी सेना के महाबलाधिकृत सिंहरण और मेरा कोष आप का है।

चन्द्र०—मै आप लोगो का कृतज्ञ होकर मित्रता को लघु नही बनाना चाहता। चन्द्रगुप्त सदैव आप लोगो का वही सहचर है।

चाणक्य—परन्तु तुम्हे अभी मगध नही जाना होगा। अभी जो मगध से संदेश मिले है, वे बडे भयानक है! सेनापति, तुम्हारे पिता कारागार मे है! और भी........

चन्द्र०—इतने पर भी आप मुझे मगध जाने से रोक रहे है?

चाणक्य—यह प्रश्न अभी मत करो।

[चन्द्रगुप्त सिर झुका लेता है, एक पत्र लिये मालविका का प्रवेश]

माल०—यह सेनापति के नाम पत्र है।

चन्द्र०—(पढकर)—आर्य्य, मै जा भी नही सकता ।

चाणक्य—क्यो ?

चन्द्र०—युद्ध का आह्वान है। द्वन्द्व के लिए फिलिप्स का निमत्रण है ।

चाणक्य—तुम डरते तो नही ?

चन्द्र०—आर्य्य ! आप मेरा उपहास कर रहे है ?

चाणक्य—(हंसकर)—तब ठीक है, पौरव ! तुम्हारा यहाँ रहना हानिकारक होगा । उत्तरापथ की दासता के अवशिष्ट चिह्न फिलिप्स का नाश निश्चित है । चन्द्रगुप्त उसके लिए उपयुक्त है । परन्तु यवनो से तुम्हारा फिर सघर्ष मुझे ईप्सित नही है । यहाँ रहने से तुम्ही पर सन्देह होगा, इसलिए तुम मगध चलो । और सिहरण ! तुम सन्नद्ध रहना, यवन-विद्रोह तुम्ही को शान्त करना होगा ।

[सब का प्रस्थान]

५

मगध में नन्द की रंगशाला

[नन्द का प्रवेश]

नन्द---सुवासिनी !

सुवा०---देव !

नन्द---कही दो घडी चैन से बैठने की छुट्टी भी नहीं, तुम्हारी छाया मे विश्राम करने आया हूँ !

सुवा०---प्रभु, क्या आज्ञा है ? अभिनय देखने की इच्छा है ?

नन्द---नही सुवासिनी, अभिनय तो नित्य देख रहा हूँ। छल, प्रतारणा, विद्रोह के अभिनय देखते-देखते आँखे जल रही है। सेनापति मौर्य्य---जिसके बल पर मै भूला था, जिसके विश्वास पर मै निश्चित सोता था, विद्रोही-पुत्र चन्द्रगुप्त को सहायता पहुँचाता है ! उसी का न्याय करना था---आजीवन अन्धकूप का दण्ड देकर आ रहा हूँ। मन काँप रहा है---न्याय हुआ कि अन्याय ! हृदय सदिग्ध है। सुवासिनी ! किस पर विश्वास करूँ ?

सुवा०---अपने परिजनो पर देव !

नन्द---अमात्य राक्षस भी नही, मै तो घबरा गया हूँ।

सुवा०---द्राक्षासव ले आऊँ ?

नन्द---ले आओ---(सुवासिनी जाती है)---सुवासिनी कितनी सरल है ! प्रेम और यौवन के शीतल मेघ इस लहलही लता पर मँडरा रहे है। परन्तु ....

[सुवासिनी का पानपात्र लिये प्रवेश, पात्र भर कर देती है]

नन्द---सुवासिनी ! कुछ गाओ,---वही उन्मादक गान !

[सुवासिनी गाती है]

आज इस यौवन के माधवी कुञ्ज मे कोकिल बोल रहा !

मधु पीकर पागल हुआ, करता प्रेम-प्रलाप ,
शिथिल हुआ जाता हृदय, जैसे अपने आप ।
लाज के बन्धन खोल रहा !
बिछल रही है चाँदनी, छवि-मतवाली रात ,
कहती कम्पित अधर से, बहकाने की बात ।
कौन मधु मदिरा घोल रहा ?

नन्द—सुवासिनी ! जगत् मे और भी कुछ है—ऐसा मुझे तो नही प्रतीत होता ! क्या उस कोकिल की पुकार केवल तुम्ही सुनती हो ? ओह ! मै इस स्वर्ग से कितनी दूर था ! सुवासिनी !

[**कामुक की-सी चेष्टा करता है**]

सुवासिनी—भ्रम है महाराज ! एक वेतन पानेवाली का यह अभिनय है ।

नन्द—कभी नही, यह भ्रम है तो समस्त ससार मिथ्या है । तुम सच कहती हो, निर्बोध नन्द ने कभी वह पुकार नही सुनी । सुन्दरी ! तुम मेरी प्राणेश्वरी हो ।

सुवासिनी—(**सहसा चकित होकर**)—मै दासी हूँ महाराज !

नन्द—यह प्रलोभन देकर ऐसी छलना ! नन्द नही भूल सकता सुवासिनी ! आओ—(**हाथ पकड़ता है**)

सुवासिनी—(**भयभीत होकर**)—महाराज ! मै अमात्य राक्षस की धरोहर हूँ, सम्राट् की भोग्या नही बन सकती ।

नन्द—अमात्य राक्षस इस पृथ्वी पर तुम्हारा प्रणयी होकर नही जी सकता ।

सुवासिनी—तो उसे खोजने के लिए स्वर्ग मे जाऊँगी !

[**नन्द उसे बलपूर्वक पकड़ लेता है । ठीक उसी समय अमात्य का प्रवेश**]

नन्द—(**उसे देखते ही छोड़ता हुआ**)—तुम ! अमात्य राक्षस !

राक्षस--हाँ सम्राट् ! एक अवला पर अत्याचार न होने देने के लिए ठीक समय पर पहुँचा ।

नन्द--यह तुम्हारी अनुरक्ता है राक्षस ! मैं लज्जित हूं ।

राक्षस--मैं प्रसन्न हुआ कि सम्राट् अपने को परखने की चेष्टा करते है । अच्छा, तो इस समय जाता हूँ । चलो सुवासिनी !

[दोनों जाते हैं]

६

कुसुमपुर का प्रांत भाग—चाणक्य, मालविका और अलका

माल०—सुवासिनी और राक्षस स्वतंत्र हैं। उनका परिणय शीघ्र ही होगा! इधर मौर्य्य कारागार मे, वररुचि अपदस्थ; नागरिक लोग नन्द की उच्छृंखलताओ से असन्तुष्ट हैं।

चाणक्य—ठीक है, समय हो चला है! मालविका, तुम नर्त्तकी बन सकती हो?

माल०—हाँ, मैं नृत्यकला जानती हूँ।

चाणक्य—तो नन्द की रंगशाला मे जाओ और लो यह मुद्रा तथा पत्र; राक्षस का विवाह होने के पहले—ठीक एक घड़ी पहले—नन्द के हाथ मे दे देना! और पूछने पर बता देना कि अमात्य राक्षस ने सुवासिनी को देने के लिए कहा था। परन्तु मुझसे भेंट न हो सकी, इसलिए वह उसे लौटा देने को लाई हूँ।

माल०—(**स्वगत**) क्या?—क्या असत्य बोलना होगा! चन्द्रगुप्त के लिए सब कुछ करूँगी। (**प्रकट**)—अच्छा।

चाणक्य—मैंने सिंहरण को लिख दिया था कि चन्द्रगुप्त को शीघ्र यहाँ भेजो। तुम यवनो के सिर उठाने पर उन्हे शान्त करके आना, तब तक अलका मेरी रक्षा कर लेगी। मै चाहता हूँ कि सब सेना वणिकों के रूप मे धीरे-धीरे कुसुमपुर मे इकट्ठी हो जाय। जिस दिन राक्षस का व्याह होगा, उसी दिन विद्रोह और उसी दिन चन्द्रगुप्त राजा होगा!

अलका—परन्तु फिलिप्स के द्वन्द्व-युद्ध से चन्द्रगुप्त को लौट तो आने दीजिये, क्या जाने क्या हो!

चाणक्य—क्या हो! वही होकर रहेगा जिसे चाणक्य ने विचार करके ठीक कर लिया है। किन्तु अवसर पर एक क्षण का विलम्ब असफलता का प्रवर्त्तक हो जाता है।

[**मालविका जाती है**]

अलका--गुरुदेव, महानगरी कुसुमपुरी का ध्वंस और नन्द-पराजय इस प्रकार सम्भव है ?

चाणक्य--अलके ! चाणक्य अपना कार्य्य, अपनी वुद्धि से साधन करेगा। तुम देखती भर रहो और मैं जो वताऊँ, करती चलो। मालविका अभी वालिका है, उसकी रक्षा आवश्यक है। उसे देखो तो।

[अलका जाती है]

चाणक्य--वह सामने कुसुमपुर है, जहाँ मेरे जीवन का प्रभात हुआ था। मेरे उस सरल हृदय मे उत्कट इच्छा थी कि कोई भी, सुन्दर मन मेरा साथी हो। प्रत्येक नवीन परिचय मे उत्सुकता थी और उसके लिए मन मे सर्वस्व लुटा देने की सन्नद्धता थी। परन्तु ससार—कठोर-ससार ने सिखा दिया है कि तुम्हे परखना होगा। समझदारी आने पर यौवन चला जाता है—जव तक माला गूँथी जाती है, तव तक फूल कुम्हला जाते है। जिससे मिलने के सम्भार की इतनी धूम-धाम, सजावट, वनावट होती है, उसके आने तक मनुष्य हृदय को सुन्दर और उपयुक्त नही वनाए रह सकता। मनुष्य की चञ्चल स्थिति तव तक उस श्यामल कोमल हृदय को मरुभूमि वना देती है। यही तो विपमता है [मैं—अविश्वास, कूट-चक्र और छलनाओ का ककाल, कठोरताओ का केन्द्र ! आह ! तो इस विश्व मे मेरा कोई सुहृद् नही ? है, मेरा संकल्प, अव मेरा आत्माभिमान ही मेरा मित्र है। और थी एक क्षीण रेखा, वह जीवन-पट मे धुल चली है। धुल जाने दूँ ? सुवासिनी न न न, वह कोई नही। मैं अपनी प्रतिज्ञा पर आसक्त हूँ। भयानक रमणीयता है। आज उस प्रतिज्ञा में जन्मभूमि के प्रति कर्त्तव्य का भी यौवन चमक रहा है] तृण-शय्या पर आधे पेट खाकर सो रहनेवाले के सिर पर दिव्य यश का स्वर्ण-मुकुट ! और सामने सफलता का स्मृति-सौध (आकाश की ओर देखकर) वह, इन लाल वादलो मे दिग्दाह का धूम मिल रहा है ! भीषण रव ने सत्र जैसे चाणक्य का नाम चिल्ला रहे हैं। (देख कर) है ! यह कौन भूमि-सन्धि तोड कर सर्प के समान निकल रहा है ! छिप कर देखूँ—

[छिप जाता है। एक ढूह की मिट्टी गिरती है, उसमें से शकटार वनमानुष के समान निकलता है]

शक०—(चारो ओर देखकर आंख बन्द कर लेता है, फिर खोलता हुआ)—आँखे नही सह सकती, इन्ही प्रकाश-किरणो के लिए तडप रही थी! ओह, तीखी है! तो क्या मै जीवित हूँ? कितने दिन हुए, कितने महीने, कितने वर्ष? नही स्मरण है। अन्धकूप की प्रधानता सर्वोपरि थी। सात लडके भूख से तडप कर मरे। कृतज्ञ हूँ उस अन्धकार का, जिसने उन विवर्ण मुखों को न देखने दिया। केवल उनके दम तोडने का क्षीण शब्द सुन सका। फिर भी जीवित रहा—सत्तू और नमक पानी से मिलाकर अपनी नसो से रक्त पीकर जीवित रहा! प्रतिहिंसा के लिए! पर अब शेप है, दम घुट रहा है। ओह! (गिर पड़ता है)

[चाणक्य पास आकर कपड़ा निचोड़ कर मुंह में जल डाल सचेत करता है]

चाणक्य—आह! तुम कोई दुखी मनुष्य हो! घबराओ मत, मै तुम्हारी सहायता के लिए प्रस्तुत हूँ।

शक०—(ऊपर देखकर)—तुम सहायता करोगे? आश्चर्य? मनुष्य मनुष्य की सहायता करेगा, वह उसे हिंस्र पशु के समान नोच न डालेगा! हाँ, यह दूसरी बात है कि वह जोक की तरह बिना कष्ट दिये रक्त चूसे। जिसमे कोई स्वार्थ न हो, ऐसी सहायता! तुम भूखे भेडिये!

चाणक्य—अभागे मनुष्य! सब से चौक कर अलग न उछल! अविश्वास की चिनगारी पैरो के नीचे से हटा। तुम जैसे दुखी बहुत-से पडे है। यदि सहायता नही तो परस्पर का स्वार्थ ही सही।

शक०—दुख! दुख का नाम सुना होगा, या कल्पित आशका से तुम उसका नाम लेकर चिल्ला उठते होगे। देखा है कभी—सात-सात गोद के लालो को भूख से तडप कर मरते? अन्धकार की घनी चादर मे बरसो भूगर्भ की जीवित समाधि मे एक-दूसरे को, अपना आहार देकर

स्वेच्छा से मरते देखा है—प्रतिहिंसा की स्मृति को ठोकरे मार-मार कर जगाते, और प्राण विसर्जन करते ? देखा है कभी यह कष्ट—उन सबो ने अपना आहार मुझे दिया और पिता होकर भी मै पत्थर-सा जीवित रहा ! उनका आहार खा डाला—उन्हे मरने दिया ! जानते हो क्यो ? वे सुकुमार थे, वे सुख की गोद मे पले थे, वे नही सहन कर सकते थे, अत सब मर जाते । मै बच रहा प्रतिशोध के लिए ! दानवी प्रतिहिंसा के लिए ! ओह ! उस अत्याचारी नर-राक्षस की अँतडियो मे से खीचकर एक बार रक्त का फुहारा छोडता !—इस पृथ्वी को उसी से रँगी देखता !

चाणक्य—सावधान ! (**शकटार को उठाता है ।**)

शक०—सावधान हो वे, जो दुर्बलो पर अत्याचार करते है ! पीडित पददलित, सब तरह लुटा हुआ ! जिसने पुत्रो की हड्डियो से सुरग खोदा है, नखो से मिट्टी हटाई है, उसके लिए सावधान रहने की आवश्यकता नही । मेरी वेदना अपने अन्तिम अस्त्रो से सुसज्जित है ।

चाणक्य—तो भी तुमको प्रतिशोध लेना है ! हम लोग एक ही पथ के पथिक है । घबराओ मत । क्या तुम्हारा और कोई भी इस ससार मे जीवित नही ?

शक०—बची थी, पर न जाने कहाँ है । एक बालिका—अपनी माता की स्मृति—सुवासिनी । पर अब कहाँ है, कौन जाने !

चाणक्य—क्या कहा ? सुवासिनी ?

शक०—हाँ सुवासिनी ।

चाणक्य—और तुम शकटार हो ?

शक०—(**चाणक्य का गला पकडकर**)—घोट दूँगा गला—यदि फिर यह नाम तुमने लिया ! मुझे नन्द से प्रतिशोध ले लेने दो, फिर चाहे डौंडी पीटना ।

चाणक्य—(**उसका हाथ हटाते हुए**)—वह सुवासिनी नन्द की रंगशाला में है । मुझे पहचानते हो ?

शक०—नहीं तो—(देखता है)

चाणक्य—तुम्हारे प्रतिवेशी, सखा ब्राह्मण चणक का पुत्र विष्णुगुप्त। तुम्हारी दिलाई हुई जिसकी ब्रह्मवृत्ति छीन ली गई, जो तुम्हारा सहकारी जान कर निर्वासित कर दिया गया, मैं उसी चणक का पुत्र चाणक्य हूँ, जिसकी शिखा पकड कर राजसभा में खींची गई, जो वन्दीगृह में मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा था! मुझ पर विश्वास करोगे ?

शक०—(**विचारता हुआ खड़ा हो जाता है**)—करूँगा, जो तुम कहोगे वही करूँगा। किसी तरह प्रतिशोध चाहिए।

चाणक्य—तो चलो मेरी झोपडी में, इस सुरग को घास-फूस से ढँक दो।

[दोनो ढँक कर जाते हैं]

७

नन्द के राजमन्दिर का एक प्रकोष्ठ

नन्द—आज क्यों मेरा मन अनायास ही शंकित हो रहा है। कुछ नहीं .. होगा कुछ।

[**सेनापति मौर्य्य की स्त्री को साथ लिए हुए वररुचि का प्रवेश**]

नन्द—कौन है यह स्त्री ?

वररुचि—जय हो देव, यह सेनापति मौर्य्य की स्त्री है।

नन्द—क्या कहना चाहती है ?

स्त्री—राजा प्रजा का पिता है। वही उसके अपराधों को क्षमा करके सुधार सकता है। चन्द्रगुप्त बालक है, सम्राट्! उसके अपराध मगध से कोई सम्बन्ध नहीं रखते, तब भी वह निर्वासित है। परन्तु सेनापति पर क्या अभियोग है ? मैं असहाय मगध की प्रजा श्रीचरणों में निवेदन करती हूँ—मेरा पति छोड़ दिया जाय। पति और पुत्र दोनों से न वञ्चित की जाऊँ।

नन्द—रमणी! राजदण्ड पति और पुत्र के मोहजाल से सर्वथा स्वतन्त्र है। षड्यन्त्रकारियों के लिए वह बहुत निष्ठुर है, निर्म्मम है! कठोर है! तुम लोग आग की ज्वाला से खेलने का फल भोगो। नन्द इन आँसू-भरी आँखों तथा अञ्चल पसार कर भिक्षा के अभिनय में नहीं भुलवाया जा सकता।

स्त्री—ठीक है महाराज! मैं ही भ्रम में थी। सेनापति मौर्य्य का ही तो यह अपराध है। जब कुसुमपुर की समस्त प्रजा विरुद्ध थी, जब जारज-पुत्र के रक्त-रँगे हाथों से सम्राट् महापद्म की लीला शेष हुई थी, तभी सेनापति को चेतना चाहिए था! कृतघ्न के साथ उपकार किया है, यह उसे नहीं मालूम था।

नन्द—चुप दुष्टे! (**उसका केश पकड़ कर खींचना चाहता है, वररुचि बीच में आकर रोकता है**)

वर०---महाराज ! सावधान। यह अबला है, स्त्री है।

नन्द---यह मैं जानता हूँ कात्यायन ! हटो।

वर०---आप जानते है, पर इस समय आपको विस्मृत हो गया है।

नन्द---तो क्या मैं तुम्हे भी इसी कुचक्र मे लिप्त समझूँ ?

वर०---यह महाराज की इच्छा पर निर्भर है, और किसी का दास न रहना मेरी इच्छा पर, मैं शस्त्र समर्पण करता हूँ !

नन्द---(**वररुचि का छुरा उठा कर**)---विद्रोह ! ब्राह्मण हो न तुम; मैंने अपने को स्वय धोखा दिया। जाओ। परन्तु, ठहरो। प्रतिहार !

[**प्रतिहार सामने आता है**]

नन्द---इसे वन्दी करो। और इस स्त्री के साथ मौर्य्य के समीप पहुँचा दो।

[**प्रहरी दोनों को वंदी करते हैं**]

वर०---नन्द ! तुम्हारे पाप का घडा फूटना ही चाहता है। अत्याचार की चिनगारी साम्राज्य का हरा-भरा कानन दग्ध कर देगी ! न्याय का गला घोंट कर तुम उस भीषण पुकार को नही दबा सकोगे जो तुम तक पहुँचती है अवश्य, किन्तु चाटुकारो द्वारा और ही ढग से।

नन्द---बस ले जाओ। (**सब का प्रस्थान**)

नन्द---(**स्वगत**) क्या अच्छा नही किया ? परन्तु ये सब मिले हैं, जाने दो ! (**एक प्रतिहार का प्रवेश**) क्या है ?

प्रतिहार---जय हो देव ! एक सदिग्ध स्त्री राजमन्दिर मे घूमती हुई पकडी गई है। उसके पास अमात्य राक्षस की मुद्रा और एक पत्र मिला है।

नन्द---अभी ले आओ।

[**प्रतिहार जाकर मालविका को साथ लाता है**]

नन्द---तुम कौन हो ?

माल०---मैं एक स्त्री हूँ, महाराज !

नन्द---पर तुम यहाँ किसके पास आई हो ?

माल०—मैं—मैं, मुझे किसी ने शतद्रु-तट से भेजा है। मैं पथ में बीमार हो गई थी, विलम्ब हुआ।

नन्द—कैसा विलम्ब ?

माल०—इस पत्र को सुवासिनी नाम की स्त्री के पास पहुँचाने में।

नन्द—तो किसने तुम्हें भेजा है ?

माल०—मैं नाम तो नहीं जानती।

नन्द—हूँ! (**प्रतिहार से**) पत्र कहाँ है ?

[**प्रतिहार पत्र और मुद्रा देता है, नन्द उसे पढ़ता है**]

नन्द—तुमको बतलाना पड़ेगा, किसने तुमको यह पत्र दिया है ? बोलो, शीघ्र बोलो, राक्षस ने भेजा था ?

माल०—राक्षस नहीं, वह मनुष्य था।

नन्द—दुष्टे, शीघ्र बता! वह राक्षस ही रहा होगा।

माल०—जैसा आप समझ लें।

नन्द—(**क्रोध से**) प्रतिहार! इसे भी ले जाओ उन विद्रोहियों की मांद में! ठहरो, पहले जाकर शीघ्र सुवासिनी और राक्षस को, चाहे जिस अवस्था में हो, ले आओ!

[**नन्द चिन्तित भाव से दूसरी ओर टहलता है, मालविका बंदी होती है**]

नन्द—आज सबको एक साथ ही सूली पर चढ़ा दूँगा। नहीं—(**पैर पटक कर**)—हाथियों के पैरों के तले कुचलवाऊँगा। यह कथा समाप्त होनी चाहिए। नन्द नीचजन्मा है न! यह विद्रोह उसी के लिए किया जा रहा है, तो फिर उसे भी दिखा देना है कि मैं क्या हूँ, यह नाम सुन कर लोग काँप उठें। प्रेम न सही, भय का ही सम्मान हो।

[**पट-परिवर्तन**]

८

कुसुमपुर के प्रान्त-भाग मे—पथ। चाणक्य और पर्वतेश्वर

चाणक्य—चन्द्रगुप्त कहाँ है ?

पर्व०—सार्थवाह के रूप मे युद्ध-व्यवसायियो के साथ आ रहे हैं। शीघ्र ही पहुँच जाने की सम्भावना है।

चाणक्य—और द्वन्द्व मे क्या हुआ ?

पर्व०—चन्द्रगुप्त ने बडी वीरता से युद्ध किया। समस्त उत्तरापथ मे फिलिप्स के मारे जाने पर नया उत्साह फैल गया है। आर्य्य, बहुत-से प्रमुख यवन और आर्य्यगण की उपस्थित मे वह युद्ध हुआ—वह खड्ग-परीक्षा देखने के योग्य थी। वह वीर-दृश्य अभिनन्दनीय था।

चाणक्य—यवन लोगो के क्या भाव थे ?

पर्व०—सिंहरण अपनी सेना के साथ रंगशाला की रक्षा कर रहा था, कुछ हलचल तो हुई, पर वह पराजय का क्षोभ था। यूडेमिस, जो उसका सहकारी था, अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। किसी प्रकार वह ठंढा पडा। यूडेमिस सिकन्दर की आज्ञा की प्रतीक्षा मे रुका था। अकस्मात् सिकन्दर के मरने का समाचार मिला। यवन लोग अब अपनी ही सोच रहे है, चन्द्रगुप्त सिंहरण को वही छोड कर यहाँ चला आया, क्योकि आपका आदेश था।

[**अलका का प्रवेश**]

अलका—गुरुदेव, यज्ञ का प्रारम्भ है।

चाणक्य—मालविका कहाँ है ?

अलका—वह बन्दी की गई और राक्षस इत्यादि भी बन्दी होने ही वाले हैं। वह भी ठीक ऐसे अवसर पर जब उनका परिणय हो रहा है। क्योकि आज ही.......

चाणक्य—तब तुम जाओ, अलके! उस उत्सव से तुम्हे अलग न रहना चाहिये। उनके पकडे जाने के अवसर पर ही नगर भर मे उत्तेजना फैल सकती है। जाओ शीघ्र।

[अलका का प्रस्थान]

पर्व०—मुझे क्या आज्ञा है ?

चाणक्य—कुछ चुने हुए अश्वारोहियों को साथ लेकर प्रस्तुत रहना। चन्द्रगुप्त जब भीतर से युद्ध प्रारम्भ करे, उस समय तुमको नगर-द्वार पर आक्रमण करना होगा।

[गुफा का द्वार खुलना......मौर्य्य, मालविका, शकटार, वररुचि, पीछे-पीछे चन्द्रगुप्त की जननी का प्रवेश]

चाणक्य—आओ मौर्य्य !

मौर्य्य—हम लोगों के उद्धारकर्त्ता आप ही महात्मा चाणक्य हैं ?

माल०—हाँ, यही हैं।

मौर्य्य—प्रणाम।

चाणक्य—शत्रु से प्रतिशोध लेने के लिए जियो सेनापति ! नन्द के पापों की पूर्णता ने तुम्हारा उद्धार किया है। अब तुम्हारा अवसर है।

मौर्य्य—इन दुर्बल हड्डियों को अन्धकूप की भयानकता खटखटा रही है।

शकटार—और रक्त-मय गम्भीर वीभत्स दृश्य, हत्या का निष्ठुर आह्वान कर रहा है।

[चन्द्रगुप्त का प्रवेश—माता-पिता के चरण छूता है]

चन्द्र०—पिता ! तुम्हारी यह दशा !! एक-एक पीडा की, प्रत्येक निष्ठुरता की गिनती होगी। मेरी माँ ! उन सब का प्रतिकार होगा, प्रतिशोध लिया जायगा ! ओह, मेरा जीवन व्यर्थ है ! नन्द !

चाणक्य—चन्द्रगुप्त, सफलता का एक ही क्षण होता है। आवेग से और कर्त्तव्य से बहुत अन्तर है।

चन्द्रगुप्त—गुरुदेव आज्ञा दीजिये !

चाणक्य—देखो उधर, नागरिक लोग आ रहे हैं। सम्भवत यही अवसर है तुम लोगों के भीतर जाने का और विद्रोह फैलाने का।

[नागरिकों का प्रवेश]

पहला नागरिक—त्रेण और कस का शासन क्या दूसरे प्रकार का रहा होगा ?

दूसरा नाग०—ब्याह की वेदी से वर-वधू को घसीट ले जाना, इतने बडे नागरिक का यह अपमान ! अन्याय है ।

तीसरा नाग०—सो भी अमात्य राक्षस और सुवासिनी को ! कुसुमपुर के दो सुन्दर फूल !

चौथा नाग०—और सेनापति, मत्री, सबो को अन्धकूप मे डाल देना ।

मौर्य्य—मत्री, सेनापति और अमात्यो को वन्दी बना कर जो राज्य करता है, वह कैसा अच्छा राजा है नागरिक ! उसकी कैसी अद्भुत योग्यता है ! मगध को गर्व होना चाहिए ।

पहला नाग०—गर्व नही वृद्ध ! लज्जा होनी चाहिए। ऐसा जघन्य अत्याचार !

वर०—यह तो मगध का पुराना इतिहास है । जरासध का यह अखाडा है । यहाँ एकाधिपत्य की कटुता सदैव से अभ्यस्त है ।

दूसरा नाग०—अभ्यस्त होने पर भी अब असह्य है !

शक०—आज आप लोगो को बडी वेदना है, एक उत्सव का भग होना अपनी आँखो से देखा है ; नही तो जिस दिन शकटार को दण्ड मिला था, एक अभिजात नागरिक की सकुटुम्ब हत्या हुई थी, उस दिन जनता कहाँ सो रही थी ।

तीसरा नाग०—सच तो, पिता के समान हम लोगो की रक्षा करने वाला मत्री शकटार—हे भगवान् !

शक०—मै ही हूँ । ककाल-सा जीवित समाधि से उठ खडा हुआ हूँ । मनुष्य मनुष्य को इस तरह कुचल कर स्थिर न रह सकेगा ! मै पिशाच बन कर लौट आया हूँ—अपने निरपराध सात पुत्रो की निष्ठुर हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए । चलोगे साथ ?

चौथा नाग०—मत्री शकटार ! आप जीवित है ?

शक०—हाँ, महापद्म के जारज पुत्र नन्द की—वधिक, हिंस्र-पशु नन्द की—प्रतिहिंसा का लक्ष्य शकटार मैं ही हूँ !

सब नाग०—हो चुका न्यायाधिकरण का ढोंग ! जनता की शुभ कामना करने की प्रतिज्ञा नष्ट हो गई। अब नहीं, आज न्यायाधिकरण में पूछना होगा !

मौर्य्य—और मेरे लिए भी कुछ......

नाग०—तुम......?

मौर्य्य—सेनापति मौर्य्य—जिसका तुम लोगों को पता ही न था।

नाग०—आश्चर्य ! हम लोग आज क्या स्वप्न देख रहे हैं ? अभी लौटना चाहिए। चलिए आप लोग भी।

शक०—परन्तु मेरी रक्षा का भार कौन लेता है ?

[सब इधर-उधर देखने लगते हैं, चन्द्रगुप्त तन कर खड़ा हो जाता है]

चन्द्र०—मैं लेता हूँ ! मैं उन सब पीड़ित, आघात-जर्जर, पद-दलित लोगों का संरक्षक हूँ, जो मगध की प्रजा हैं।

चाणक्य—साधु ! चन्द्रगुप्त !

[सहसा सब उत्साहित हो जाते हैं, पर्वतेश्वर और चाणक्य तथा वररुचि को छोड़ कर सब जाते हैं]

वररुचि—चाणक्य ! यह क्या दावाग्नि फैला दी तुमने ?

चाणक्य—उत्पीडन की चिनगारी को अत्याचारी अपने ही अञ्चल में छिपाए रहता है ! कात्यायन ! तुमने अन्धकूप का सुख क्यों लिया ? —कोई अपराध तुमने किया था ?

वर०—नन्द की भूल थी। उसे अब भी सुधारा जा सकता है। ब्राह्मण ! क्षमानिधि ! भूल जाओ !

चाणक्य—प्रतिज्ञा पूर्ण होने पर हम-तुम साथ ही वैखानस होंगे कात्यायन ! शक्ति हो जाने दो, फिर क्षमा का विचार करना। चलो पर्वतेश्वर ! सावधान।

[सब का प्रस्थान]

९

नन्द की रंगशाला—सुवासिनी और राक्षस वन्दी-वेश में

नन्द—अमात्य राक्षस, यह कौन-सी मत्रणा थी ? यह पत्र तुम्ही ने लिखा है ?

राक्षस—(**पत्र लेकर पढता हुआ**)—' सुवासिनी, उस कारागार से शीघ्र निकल भागो, इस स्त्री के साथ मुझसे आकर मिलो । मै उत्तरापथ मे नवीन राज्य की स्थापना कर रहा हूँ । नन्द से फिर समझ लिया जायगा " इत्यादि । (**नन्द की ओर देखकर**) आश्चर्य, मैने तो यह नही लिखा ! यह कैसा प्रपच है,—और किसी का नही, उसी ब्राह्मण चाणक्य का महाराज, सतर्क रहिये, अपने अनुकूल परिजनो पर भी, अविश्वास न कीजिए । कोई भयानक घटना होने वाली है, यह उसी का सूत्रपात है !

नन्द—इस तरह से मे प्रतारित नही किया जा सकता, देखो यह तुम्हारी मुद्रा है ! (**मुद्रा देता है**)

[**राक्षस देख कर सिर नीचा कर लेता है**]

नन्द—कृतघ्न ! बोल, उत्तर दे !

राक्षस—मै कहूँ भी, तो आप मानने ही क्यो लगे !

नन्द—तो आज तुम लोगो को भी उसी अन्धकूप मे जाना होगा, प्रतिहार !

(**राक्षस वन्दी किया जाता है । नागरिको का प्रवेश**)

[**राक्षस को शृंखला में जकड़ा हुआ देखकर उन सबो मे उत्तेजना**]

नाग०—सम्राट् ! आपसे मगध की प्रजा प्रार्थना करती है कि नागरिक राक्षस और अन्य लोगो पर भी राजदण्ड द्वारा किए गये जो अत्याचार है, उनका फिर से निराकरण होना चाहिए ।

नन्द—क्या ! तुम लोगो को मेरे न्याय मे अविश्वास है ?

नाग०—इसके प्रमाण है—शकटार, वररुचि और मौर्य्य !

नन्द—(**उन लोगो को देखकर**) शकटार ! तू अभी जीवित है ?

शक०—जीवित हूँ नन्द ! नियति सम्राटो से भी प्रबल है।

नन्द—यह मै क्या देखता हूँ ! प्रतिहार ! पहले इन विद्रोहियो को वन्दी करो। क्या तुम लोगो ने इन्हे छुडाया है ?

नाग०—उनका न्याय हम लोगो के सामने किया जाय, जिसमे हम लोगो को राज-नियमो मे विश्वास हो सम्राट् ! न्याय को गौरव देने के लिए इनके अपराध सुनने की इच्छा आपकी प्रजा रखती है।

नन्द—प्रजा की इच्छा से राजा को चलना होगा ?

नाग०—हाँ, महाराज !

नन्द—क्या तुम सब-के-सब विद्रोही हो ?

नाग०—यह, सम्राट् अपने हृदय से पूछ देखे !

शक०—मेरे सात निरपराध पुत्रो का रक्त !

नाग०—न्यायाधिकरण की आड मे इतनी बडी नृशसता !

नन्द०—प्रतिहार ! इन सबको वन्दी बनाओ !

[**राज-प्रहरियो का सबको बांधने का उद्योग, दूसरी ओर से सैनिकों के साथ चन्द्रगुप्त का प्रवेश**]

चन्द्र०— ठहरो (**सब स्तब्ध रह जाते है**)—महाराज नन्द ! हम सब आप की प्रजा है, मनुष्य है, हमे पशु बनने का अवसर न दीजिए।

वररुचि—विचार की तो बात है, यदि सुव्यवस्था से काम चल जाय, तो उपद्रव क्यो हो ?

नन्द—(**स्वगत**)— विभीषिका ! विपत्ति ! सब अपराधी और विद्रोही एकत्र हुए है (**कुछ सोचकर प्रकट**) अच्छा मौर्य्य ! तुम हमारे सेनापति हो और तुम वररुचि ! हमने तुम लोगो को क्षमा कर दिया।

शक०—और हम लोगो से पूछो ! पूछो नन्द ! अपनी नृशमताओ से पूछो ! क्षमा ? कौन करेगा ! तुम ? कदापि नही। तुम्हारे घृणित अपराधो का न्याय होगा।

नन्द—(तन कर)—तब रे मूर्खो ! नन्द की निष्ठुरता ! प्रतिहार ! राजसिहासन सकट मे है ! आओ, आज हमे प्रजा से लडना है ।

[प्रतिहार प्रहरियों के साथ आगे बढ़ता है—कुछ युद्ध होने के साथ ही राजपक्ष के कुछ लोग मारे जाते हैं, और एक सैनिक आकर नगर के ऊपर आक्रमण होने की सूचना देता है। युद्ध करते-करते चन्द्रगुप्त नन्द को वन्दी बनाता है]

[चाणक्य का प्रवेश]

चाणक्य—नन्द ! शिखा खुली है। फिर खिचवाने की इच्छा हुई है, इसीलिए आया हूँ । राजपद के अपवाद नन्द ! आज तुम्हारा विचार होगा !

नन्द—तुम ब्राह्मण ! मेरे टुकडो से पले हुए ! दरिद्र ! तुम मगध के सम्राट् का विचार करोगे ! तुम सब लुटेरे हो, डाकू हो ! विप्लवी हो—अनार्य्य हो !

चाणक्य—(**राजसिंहासन के पास जाकर**)—नन्द ! तुम्हारे ऊपर इतने अभियोग है—महापद्म की हत्या, शकटार को वन्दी करना—उसके सातो पुत्रो को भूख से तडपा कर मारना ! सेनापति मौर्य्य की हत्या का उद्योग—उसकी स्त्री को और वररुचि को वन्दी बनाना ! कितनी ही कुलीन कुमारियो का सतीत्व-नाश—नगर-भर मे व्यभिचार का स्रोत बहाना ! ब्रह्मस्व और अनाथो की वृत्तियो का अपहरण ! अन्त मे सुवासिनी पर अत्याचार—शकटार की एकमात्र बची हुई सन्तान, सुवासिनी, जिसे तुम अपनी घृणित पाशव-वृत्ति का... !

नागरिक—(**बीच में रोक कर हल्ला मचाते हुए**)—पर्य्याप्त है ! यह पिशाच-लीला और सुनने की आवश्यकता नही, सब प्रमाण यहीं उपस्थित है ।

चन्द्र०—ठहरिए !—(**नन्द से**)—कुछ उत्तर देना चाहते है ?

नन्द—कुछ नही ।

[**"वध करो ! हत्या करो !"—का आतंक फैलता है**]

चाणक्य—तब भी कुछ समझ लेना चाहिए नन्द ! हम ब्राह्मण है, तुम्हारे लिए, भिक्षा माँग कर तुम्हे जीवन-दान दे सकते हैं। लोगे ?

("नहीं मिलेगी, नहीं मिलेगी" की उत्तेजना)

[कल्याणी को वन्दिनी बनाए पर्वतेश्वर का प्रवेश]

नन्द—आ बेटी, असह्य ! मुझे क्षमा करो ! चाणक्य, मैं कल्याणी के संग जंगल में जाकर तपस्या करना चाहता हूँ।

चाणक्य—नागरिक वृन्द ! आप लोग आज्ञा दें—नन्द को जाने की आज्ञा !

शक०—(छुरा निकालकर नन्द की छाती मे घुसेड़ देता है) सात हत्याएँ है ! यदि नन्द सात जन्मो मे मेरे ही द्वारा मारा जाय तो मैं उसे क्षमा कर सकता हूँ। मगध नन्द के विना भी जी सकता है !

वररुचि—अनर्थ !

[सब स्तब्ध रह जाते है]

राक्षस—चाणक्य, मुझे भी कुछ बोलने का अधिकार है ?

चन्द्र०—अमात्य राक्षस का बंधन खोल दो ! आज मगध के सब नागरिक स्वतंत्र है !

[राक्षस, सुवासिनी, कल्याणी का बंधन खुलता है]

राक्षस—राष्ट्र इस तरह नहीं चल सकता।

चाणक्य—तब ?

राक्षस—परिषद् की आयोजना होनी चाहिए।

नागरिक वृन्द—राक्षस, वररुचि, शकटार, चन्द्रगुप्त और चाणक्य की सम्मिलित परिषद् की हम घोषणा करते हैं।

चाणक्य—परन्तु उत्तरापथ के समान गणतंत्र की योग्यता मगध में नहीं, और मगध पर विपत्ति की भी संभावना है। प्राचीनकाल मे मगध साम्राज्य रहा है, इसीलिए यहाँ एक सबल और सुनियंत्रित शासक की आवश्यकता है। आप लोगो को यह जान लेना चाहिए कि यवन अभी हमारी छाती पर है।

नाग०—तो कौन इसके उपयुक्त है ?

चाणक्य—आप ही लोग इसे विचारिए।

शक०—हम लोगो का उद्धारकर्त्ता। उत्तरापथ के अनेक समरो का विजेता—वीर चन्द्रगुप्त !

नाग०—चन्द्रगुप्त की जय !

चाणक्य—अस्तु, बढो चन्द्रगुप्त ! सिंहासन शून्य नही रह सकता। अमात्य राक्षस ! सम्राट् का अभिषेक कीजिये !

[मृतक हटाए जाते है ; कल्याणी दूसरी ओर जाती है ; राक्षस चन्द्रगुप्त का हाथ पकड़कर सिंहासन पर बैठाता है]

सब नाग०—सम्राट् चन्द्रगुप्त की जय ! मगध की जय !

चाणक्य—मगध के स्वतत्र नागरिको को बधाई है ! आज आप लोगो के राष्ट्र का नवीन जन्म-दिवस है। स्मरण रखना होगा कि ईश्वर ने सब मनुष्यो को स्वतत्र उत्पन्न किया है, परन्तु व्यक्तिगत स्वतत्रता वही तक दी जा सकती है, जहाँ दूसरो की स्वतत्रता मे वाधा न पडे। यही राष्ट्रीय नियमो का मूल है। वत्स चन्द्रगुप्त ! स्वेच्छाचारी शासन का परिणाम तुमने स्वय देख लिया है, अब मत्रि-परिषद् की सम्मति से मगध और आर्यावर्त्त के कल्याण मे लगो।

('सम्राट् चन्द्रगुप्त की जय' का घोष)

[पटाक्षेप]

चतुर्थ अंक

१

मगध में राजकीय उपवन—कल्याणी

कल्याणी—मेरे जीवन के दो स्वप्न थे—दुर्दिन के वाद आकाश के नक्षत्र-विलास-सी चन्द्रगुप्त की छवि, और पर्वतेश्वर से प्रतिशोध, किन्तु मगध की राजकुमारी आज अपने ही उपवन मे वन्दिनी है ! मैं वही तो हूँ—जिसके सकेत पर मगध का साम्राज्य चल सकता था ! वही शरीर है, वही रूप है, वही हृदय है, पर छिन गया अधिकार और मनुष्य का मान-दड ऐश्वर्य्य । अव तुलना मे सवसे छोटी हूँ । जीवन, लज्जा की रगभूमि वन रहा है ! (**सिर झुका लेती है**) तो जव नन्दवंश का कोई न रहा, तव एक राजकुमारी वच कर क्या करेगी ?

[**मद्यप की-सी चेष्टा करते हुए पर्वतेश्वर को प्रवेश करते देख चुप हो जाती है**]

पर्व०—मगध मेरा है—आधा भाग मेरा है ! और मुझसे कुछ पूछा तक न गया ! चन्द्रगुप्त अकेले सम्राट् वन वैठा ! कभी नही, यह मेरे जीते-जी नही हो सकता ! (**सामने देखकर**) कौन है ? यह कोई अप्सरा होगी ! अरे ! कोई अपदेवता न हो !

[**प्रस्थान**]

कल्याणी—मगध के राजन्दिर उसी तरह खडे है , गंगा शोण मे उसी स्नेह से मिल रही है ; नगर का कोलाहल पूर्ववत् है । परन्तु न रहेगा एक नन्द-वंश ! फिर क्या करूँ ? आत्महत्या करूँ ? नही, जीवन इतना सस्ता नही ? अहा, देखो—वह मधुर आलोकवाला चन्द्र ! उसी प्रकार नित्य—जैसे एकटक इसी पृथ्वी को देख रहा हो ! कुमुदवन्धु !

[गाती है—]

सुधा-सीकर से नहला दो !
लहरें डूब रही हो रस मे,
रह न जायँ वे अपने बस मे,
रूप-राशि इस व्यथित हृदय-सागर को—
वहला दो !
अन्धकार उजला हो जाये,
हँसी हसमाला मँडराए,
मधुराका आगमन कलरवो के मिस—
कहला दो !
करुणा के अंचल पर निखरे
घायल आँसू है जो विखरे,
ये मोती बन जायँ, मृदुल कर से लो—
सहला दो !

[पर्वतेश्वर का फिर प्रवेश]

पर्व०—तुम कौन हो सुन्दरी ? मैं भ्रमवश चला गया था।

कल्याणी—तुम कौन हो ?

पर्व०—पर्वतेश्वर।

कल्याणी—मैं हूँ कल्याणी, जिसे नगर-अवरोध के समय तुमने वन्दी वनाया था।

पर्व०—राजकुमारी ! नन्द की दुहिता तुम्ही हो ?

कल्याणी—हाँ पर्वतेश्वर !

पर्व०—तुम्ही से मेरा ब्याह होने वाला था ?

कल्याणी—अब यम से होगा !

पर्व०—नही सुन्दरी, ऐसा भरा हुआ यौवन !

कल्याणी—सब छीन कर अपमान भी !

पर्व०—तुम नही जानती हो, मगध का आधा राज्य मेरा है। तुम प्रियतमा होकर सुखी रह सकोगी।

कल्याणी—मै अब सुख नही चाहती। सुख अच्छा है या दुःख—मैं स्थिर न कर सकी। तुम मुझे कष्ट न दो।

पर्व०—हमारे-तुम्हारे मिल जाने से मगध का पूरा राज्य हम लोगो का हो जायगा। उत्तरापथ की सकट-मयी परिस्थित से अलग रहकर यही शान्ति मिलेगी।

कल्याणी—चुप रहो।

पर्व०—सुन्दरी, तुम्हे देख लेने पर ऐसा नही हो सकता!

[**उसे पकड़ना चाहता है, वह भागती है, परन्तु पर्वतेश्वर पकड़ ही लेता है। कल्याणी उसी का छुरा निकाल कर उसका वध करती है, चीत्कार सुनकर चन्द्रगुप्त आ जाता है।**]

चन्द्रगुप्त—कल्याणी! कल्याणी! यह क्या!!

कल्याणी—वही जो होना था। चन्द्रगुप्त! यह पशु मेरा अपमान करना चाहता था—मुझे भ्रष्ट करके, अपनी सगिनी बनाकर पूरे मगध पर अधिकार करना चाहता था। परन्तु मौर्य्य! कल्याणी ने वरण किया था केवल एक पुरुष को—वह था चन्द्रगुप्त।

चन्द्रगुप्त—क्या यह सच है, कल्याणी?

कल्याणी—हाँ यह सच है। परन्तु तुम मेरे पिता के विरोधी हुए, इसलिए उस प्रणय को—प्रेम पीडा को—मैं पैरो से कुचल कर, दबा कर खडी रही! अब मेरे लिए कुछ भी अवशिष्ट नही रहा, पिता! लो मै भी जाती हूँ।

[**अचानक छुरी मार कर आत्महत्या करती है। चन्द्रगुप्त उसे गोद में उठा लेता है**]

चाणक्य—(**प्रवेश करके**)—चन्द्रगुप्त! आज तुम निष्कटक हुए!

चन्द्र०—गुरुदेव! इतनी क्रूरता?

चाणक्य—महत्त्वाकाक्षा का मोती निष्ठुरता की सीपी में रहता है! चलो अपना काम करो, विवाद करना तुम्हारा काम नही। अव तुम स्वच्छन्द होकर दक्षिणापथ जाने की आयोजना करो (**प्रस्थान**)।

[**चन्द्रगुप्त कल्याणी को लिटा देता है**]

२

पथ में राक्षस और सुवासिनी

सुवा०—राक्षस ! मुझे क्षमा करो !

राक्षस—क्यो सुवासिनी, यदि वह बाधा एक क्षण और रुकी रहती तो क्या हम लोग इस सामाजिक नियम के बन्धन से बँध न गए होते ! अब क्या हो गया ?

सुवा०—अब पिताजी की अनुमति आवश्यक हो गई है ।

राक्षस—(**व्यंग से**)—क्यो ? क्या अब वह तुम्हारे ऊपर अधिक नियत्रण रखते है ? क्या उनका तुम्हारे विगत जीवन से कुछ सम्पर्क नही ? क्या......

सुवासिनी—अमात्य ! मै अनाथ थी, जीविका के लिए मैंने चाहे कुछ भी किया हो ; पर स्त्रीत्व नही बेचा ।

राक्षस—सुवासिनी, मैंने सोचा था, तुम्हारे अक मे सिर रख कर विश्राम करते हुए मगध की भलाई से विपथगामी न हूँगा । पर तुमने ठोकर मार दिया ! क्या तुम नही जानती कि मेरे भीतर एक दुष्ट प्रतिभा सदैव सचेष्ट रहती है ? अवसर न दो, उसे न जगाओ ! मुझे पाप से बचाओ !

सुवा०—मै तुम्हारा प्रणय अस्वीकार नही करती । किन्तु अब इसका प्रस्ताव पिता जी से करो । तुम मेरे रूप और गुण के ग्राहक हो, और सच्चे ग्राहक हो, परन्तु राक्षस ! मै जानती हूँ कि यदि व्याह छोड़ कर अन्य किसी भी प्रकार से मै तुम्हारी हो जाती तो तुम व्याह मे अधिक सुखी होते । उधर पिता ने—जिनके लिए मेरा चारित्र्य, मेरी निष्कलकता नितान्त वाञ्छनीय हो सकती है—मुझे इस मलिनता के कीचड से कमल के समान हाथो मे ले लिया है ! मेरे चिरदुखी पिता ! राक्षस, तुम वासना से उत्तेजित हो, तुम नही देख रहे हो कि सामने एक जुडता हुआ घायल हृदय बिछुड जायगा, एक पवित्र कल्पना सहज ही नष्ट हो जायगी !

राक्षस—यह मै मान लेता, कदाचित् इस पर पूर्ण विश्वास भी कर लेता, परन्तु सुवासिनी, मुझे शका है। चाणक्य का तुम्हारा बाल्यपरिचय है। तुम शक्तिशाली की उपासना.......

सुवा०—ठहरो अमात्य! मै चाणक्य को इधर तो एक प्रकार से विस्मृत ही हो गई थी, तुम इस सोई हुई भ्राति को न जगाओ!

[**प्रस्थान**]

राक्षस—चाणक्य भूल सकता है? कभी नही। वह राजनीति का आचार्य्य हो जाय, वह विरक्त तपस्वी हो जाय, परन्तु सुवासिनी का चित्र— यदि अकित हो गया है तो—उहूँ—(**सोचता है**)

[**नेपथ्य से गान**]

कैसी कडी रूप की ज्वाला?
पडता है पतग-सा इसमे मन होकर मतवाला,
सान्ध्य-गगन-सी रागमयी यह बडी तीव्र है हाला,
लौह-श्रृखला से न कडी क्या यह फूलो की माला?

राक्षस—(**चैतन्य होकर**)—तो चाणक्य से फिर मेरी टक्कर होगी, होने दो! यह अधिक सुखदायी होगा। आज से हृदय का यही ध्येय रहा। शकटार से किस मुँह से प्रस्ताव करूँ! वह सुवासिनी को मेरे हाथ मे सौप दे, यह असम्भव है! तो मगध मे फिर एक आँधी आवे! चलूँ, चन्द्रगुप्त भी तो नही है, चन्द्रगुप्त सम्राट् हो सकता है, तो दूसरे भी इसके अधिकारी है। कल्याणी की मृत्यु से बहुत-से लोग उत्तेजित है। आहुति की आवश्यकता है, वह्नि प्रज्वलित है।

[**प्रस्थान**]

३

परिषद्-गृह

राक्षस--(**प्रवेश करके**)--तो आप लोगो की सम्मति है कि विजयोत्सव न मनाया जाय ? मगध का उत्कर्ष, उसके गर्व का दिन, यो ही फीका रह जाय !

शकटार--मै तो चाहता हूँ, परन्तु आर्य्य चाणक्य की सम्मति इसमे नही है।

कात्यायन--जो कार्य बिना किसी आडम्बर के हो जाय, वही तो अच्छा है।

[**मौर्य्य सेनापति और उसकी स्त्री का प्रवेश**]

मौर्य्य--विजयी होकर चन्द्रगुप्त लौट रहा है, हम लोग आज भी उत्सव न मनाने पावेगे ? राजकीय आवरण मे यह कैसी दासता है !

मौर्य्य-पत्नी--तब यही स्पष्ट हो जाना चाहिए कि कौन इस साम्राज्य का अधीश्वर है ! विजयी चन्द्रगुप्त अथवा यह ब्राह्मण या परिषद् ?

चाणक्य--(**राक्षस की ओर देखकर**) राक्षस, तुम्हारे मन में क्या है ?

राक्षस--मै क्या जानूँ, जैसी सब लोगो की इच्छा।

चाणक्य--मै अपने अधिकार और दायित्व को समझ कर कहता हूँ कि यह उत्सव न होगा।

मौर्य्य-पत्नी--तो मै ऐसी पराधीनता मे नही रहना चाहती (**मौर्य्य से**)--समझा न ! हम लोग आज भी बन्दी है।

मौर्य्य--(**क्रोध से**)--क्या कहा, बन्दी ? नही, ऐसा नही हो सकता ! हम लोग चलते है। देखूँ किसकी सामर्थ्य है जो रोके ! अपमान से जीवित रहना मौर्य्य नही जानता है। चलो--

(**दोनो का प्रस्थान**)

[**चाणक्य और कात्यायन को छोड़कर सब जाते है**]

कात्या०---विष्णुगुप्त, तुमने समझकर ही तो ऐसा किया होगा। फिर भी मौर्य्य का इस तरह चले जाना चन्द्रगुप्त को .

चाणक्य---बुरा लगेगा ? क्यो ? भला लगने के लिए मैं कोई काम नही करता कात्यायन ! परिणाम मे भलाई ही मेरे कामो की कसौटी है। तुम्हारी इच्छा हो, तो तुम भी चले जाओ ! बको मत !

[**कात्यायन का प्रथान**]

चाणक्य---कारण समझ मे नही आता---यह वात्याचक्र क्यो ?---(**विचारता हुआ**)---क्या कोई नवीन अध्याय खुलने वाला है ? अपनी विजयों पर मुझ विश्वास है, फिर यह क्या ? (**सोचता है**)

[**सुवासिनी का प्रवेश**]

सुवा०---विष्णुगुप्त !

चाणक्य---कहो सुवासिनी !

सुवा०---अभी परिषद्-गृह से जाते हुए पिताजी बहुत दुखी दिखाई दिये, तुमने अपमान किया क्या ?

चाणक्य---यह तुमसे किसने कहा ? इस उत्सव को रोक देने से साम्राज्य का कुछ बनता-बिगडता नही। मौर्य्यो का जो कुछ है, वह मेरे दायित्व पर है। अपमान हो या मान, मै उसका उत्तरदायी हूँ। और, पितृव्य-तुल्य शकटार को मै अपमानित करूँगा, यह तुम्हे कैसे विश्वास हुआ ?

सुवा०---तो राक्षस ने ऐसा क्यो . . .?

चाणक्य---कहा ? ऐ ? सो तो कहना ही चाहिए ! और तुम्हारा भी उस पर विश्वास होना आवश्यक है, क्यो न सुवासिनी ?

सुवा०---विष्णुगुप्त ! मै एक समस्या में डाल दी गई हूँ।

चाणक्य---तुम स्वय पडना चाहती हो, कदाचित् यह ठीक भी है।

सुवा०---व्यग्य न करो, तुम्हारी कृपा मुझ पर होगी ही, मुझे इसका विश्वास है।

चाणक्य---मै तुमसे बाल्य-काल से परिचित हूँ, सुवासिनी ! तुम

खेल मे भी हारने के समय रोते हुए हँस दिया करती और तब मै हार स्वीकार कर लेता। इधर तो तुम्हारा अभिनय का अभ्यास भी बढ़ गया है! तब तो (**देखने लगता है**)।

सुवा०—यह क्या विष्णगुप्त, तुम ससार को अपने वश मे करने का सकल्प रखते हो। फिर अपने को नही ? देखो दर्पण लेकर—तुम्हारी आँखो मे तुम्हारा यह कौन-सा नवीन चित्र है।

[**प्रस्थान**]

चाणक्य—क्या ? मेरी दुर्बलता ? नही! कौन है ?

दौवारिक— (**प्रवेश करके**)—जय हो आर्य्य, रथ पर मालविका आई है।

चाणक्य—उसे सीधे मेरे पास लिवा लाओ!

[**दौवारिक का प्रस्थान—एक चर का प्रवेश**]

चर—आर्य्य, सम्राट् के पिता और माता दोनो व्यक्ति रथ पर अभी बाहर गये है (**जाता है**)।

चाणक्य—जाने दो! इनके रहने से चन्द्रगुप्त के एकाधिपत्य में बाधा होती। स्नेहातिरेक से वह कुछ-का-कुछ कर बैठता।

[**दूसरे चर का प्रवेश**]

दूसरा—(**प्रणाम करके**)—जय हो आर्य्य, वाल्हीक मे नई हलचल है। विजेता सिल्यूकस अपनी पश्चिमी राजनीति से स्वतत्र हो गया है, अब वह सिकन्दर के पूर्वी प्रान्तो की ओर दत्तचित्त है। वाल्हीक की सीमा पर नवीन यवन-सेना के शस्त्र चमकने लगे है।

चाणक्य—(**चौंक कर**) और गाधार का समाचार ?

दूसरा—अभी कोई नवीनता नही है।

चाणक्य—जाओ। (**चर का प्रस्थान**) क्या उसका भी समय आ गया ? तो ठीक है। ब्राह्मण! अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रह! कुछ चिन्ता नही, सब सुयोग आप ही चले आ रहे हैं।

[**ऊपर देखकर हँसता है, मालविका का प्रवेश**]

माल०—आर्य्य, प्रणाम करती हूँ। सम्राट् ने श्रीचरणों में सविनय प्रणाम करके निवेदन किया है कि,आपके आशीर्वाद से दक्षिणापथ में अपूर्व सफलता मिली, किन्तु सुदूर दक्षिण जाने के लिए आपका निषेध सुन कर लौटा आ रहा हूँ। सीमान्त के राष्ट्रों ने भी मित्रता स्वीकार कर ली है।

चाणक्य—मालविका, विश्राम करो। सब बातों का विवरण एक-साथ ही लूँगा।

माल०—परन्तु आर्य्य, स्वागत का कोई उत्साह राजधानी में नहीं।

चाणक्य—मालविका, पाटलीपुत्र षड्यन्त्रों का केन्द्र हो रहा है। सावधान! चन्द्रगुप्त के प्राणों की रक्षा तुम्हीं को करनी होगी।

४

[प्रकोष्ठ में चन्द्रगुप्त का प्रवेश]

चन्द्रगुप्त—विजयो की सीमा है, परन्तु अभिलाषाओ की नही। मन ऊब-सा गया है। झझटो से घडी भर अवकाश नही। गुरुदेव और क्या चाहते है, समझ मे नही आता। इतनी उदासी क्यो ? मालविका !

माल०—(**प्रवेश करके**)—सम्राट् की जय हो !

चन्द्र०—मै सब से विभिन्न, एक भय-प्रदर्शन-सा बन गया हूँ। कोई मेरा अन्तरग नही, तुम भी मुझे सम्राट् कहकर पुकारती हो !

माल०—देव, फिर मै क्या कहूँ ?

चन्द्र०—स्मरण आता है—मालव का उपवन और उसमे अतिथि के रूप मे मेरा रहना ?

माल०—सम्राट्, अभी कितने ही भयानक सघर्ष सामने है !

चन्द्र०—सघर्ष ! युद्ध देखना चाहो तो मेरा हृदय फाड कर देखो मालविका ! आशा और निराशा का युद्ध, भावो और अभावो का द्वन्द्व ! कोई कमी नही, फिर भी न जाने कौन मेरी सम्पूर्ण सूची मे रिक्त-चिह्न लगा देता है। मालविका, तुम मेरी ताम्बूल-वाहिनी नही हो, मेरे विश्वास की, मित्रता की प्रतिकृति हो। देखो, मै दरिद्र हूँ कि नही, तुमसे मेरा कोई रहस्य गोपनीय नही ! मेरे हृदय मे कुछ है कि नही, टटोलने से भी नही जान पडता !

माल०—आप महापुरुष है, साधारण जन-दुर्लभ दुर्बलता न होनी चाहिए आप मे। देव ! बहुत दिनो पर मैने एक माला बनाई है—(**माला पहनाती है**)

चन्द्र०—मालविका, इन फूलो के रस तो भौरे ले चुके है !

माल०—निरीह कुसुमो पर दोषारोपण क्यो ? उनका काम है सौरभ बिखेरना, यह उनका मुक्त दान है। उसे चाहे भ्रमर ले या पवन।

चन्द्र०—कुछ गाओ तो मन बहल जाय।

[**मालविका गाती है—**]

मधुप कब एक कली का है !
पाया जिसमे प्रेम रस, सौरभ और सुहाग,
बेसुध हो उस कली से, मिलता भर अनुराग,
विहारी कुन्जगली का है !
कुसुम धूल से धूसरित, चलता है उस राह,
काँटो मे उलझा तदपि, रही लगन की चाह,
बावला रगरली का है ।
हो मल्लिका, सरोजनी, या यूथी का पुन्ज,
अलि को केवल चाहिए, सुखमय क्रीडा-कुन्ज,
मधुप कब एक कली का है !

चन्द्र०—मालविका, मन मधुप से भी चचल और पवन से भी प्रगतिशील है, वेगवान है ।

माल०—उसका निग्रह करना ही महापुरुषो का स्वभाव है देव !

[**प्रतिहारी का प्रवेश और संकेत—मालविका उससे बात करके लौटती है**]

चन्द्र०—क्या है ?

माल०—कुछ नही, कहती थी कि यह प्राचीन राजमन्दिर अभी परिष्कृत नही , इसलिए मैंने चन्द्रसौध मे आपके शयन का प्रबध करने के लिए कह दिया है ।

चन्द्र०—जैसी तुम्हारी इच्छा—(**पान करता हुआ**) कुछ और गाओ मालविका ! आज तुम्हारे स्वर में स्वर्गीय मधुरिमा है ।

[**मालविका गाती है—**]

बज रही वशी आठो याम की ।
अब तक गूज रही है बोली प्यारे मुख अभिराम की ।
हुए चपल मृगनैन मोह-वश बजी विपंची काम की,
रूप-सुधा के दो दृग प्यालो ने ही मति बेकाम की !
बज रही वंशी०—

[कंचुकी का प्रवेश]

कंचुकी——जय हो देव, शयन का समय हो गया।

[प्रतिहारी और कंचुकी के साथ चन्द्रगुप्त का प्रस्थान]

माल०——जाओ प्रियतम ! सुखी जीवन विताने के लिए, और मैं रहती हूँ चिर-दुखी जीवन का अन्त करने के लिए। जीवन एक प्रश्न है, और मरण है उसका अटल उत्तर। आर्य्य चाणक्य की आज्ञा है——"आज घातक इस शयन-गृह मे आवेगे, इसलिए चन्द्रगुप्त यहाँ न सोने पावे, और षड्यत्रकारी पकडे जायँ।" (**शय्या पर बैठ कर**)——यह चन्द्रगुप्त की शय्या है। ओह, आज प्राणो मे कितनी मादकता है ! मैं....कहाँ हूँ ? कहाँ ? स्मृति, तू मेरी तरह सो जा ! अनुराग, तू रक्त से भी रगीन बन जा !

[गाती है——]

ओ मेरी जीवन की स्मृति ! ओ अन्तर के आतुर अनुराग !
बैठ गुलाबी विजन उषा मे गाते कौन मनोहर राग ?
चेतन सागर उर्मिल होता यह कैसी कम्पनमय तान,
यो अधीरता से न मीड लो अभी हुए है पुलकित प्रान।
कैसा है यह प्रेम तुम्हारा युगल मूर्ति की बलिहारी !
यह उन्मत्त विलास बता दो कुचलेगा किसकी क्यारी ?
इस अनन्त निधि के नाविक, हे मेरे अनग अनुराग !
पाल सुनहला बन, तनती है स्मृति, यो उस अतीत मे जाग।
कहाँ ले चले कोलाहल से मुखरित तट को छोड सुदूर,
आह ! तुम्हारे निर्दय डाँडो से होती है लहरे चूर।
देख नही सकते तुम दोनो चकित निराशा है भीमा,
बहको मत क्या न है बता दो क्षितिज तुम्हारी नव सीमा ?

[शयन]

५

प्रभात---राजमन्दिर का एक प्रान्त

चन्द्रगुप्त---(**अकेले टहलता हुआ**)---चतुर सेवक के समान ससार को जगा कर अन्धकार हट गया। रजनी की निस्तब्धता काकली से चचल हो उठी है! नीला आकाश स्वच्छ होने लगा है, या निद्राक्लान्त निशा उषा की शुभ्र चादर ओढ कर नीद की गोद मे लेटने चली है। यह जागरण का अवसर है। जागरण का अर्थ है कर्म्मक्षेत्र मे अवतीर्ण होना। और कर्म्मक्षेत्र क्या है? जीवन-सग्राम! किन्तु भीषण सघर्ष करके भी मै कुछ नही हूँ। मेरी सत्ता एक कठपुतली-सी है। तो फिर... मेरे पिता, मेरी माता, इनका तो सम्मान आवश्यक था। वे चले गये, मै देखता हूँ कि नागरिक तो क्या, मेरे आत्मीय भी आनन्द मनाने से वचित किये गये। यह परतत्रता कब तक चलेगी? प्रतिहारी!

प्रतिहारी--(**प्रवेश करके**)---जय हो देव!

चन्द्र०---आर्य्य चाणक्य को शीघ्र लिवा लाओ!

[**प्रतिहारी का प्रस्थान**]

चन्द्र०---(**टहलते हुए**)---प्रतिकार आवश्यक है।

[**चाणक्य का प्रवेश**]

चन्द्र०---आर्य्य, प्रणाम!

चाणक्य---कल्याण हो आयुष्मन्, आज तुम्हारा प्रणाम भारी-सा है!

चन्द्र०---मै कुछ पूछना चाहता हूँ।

चाणक्य---यह तो मै पहले ही से समझता था! तो तुम अपने स्वागत के लिए लडको के सदृश रूठे हो?

चन्द्र०---नही आर्य्य, मेरे माता-पिता---मै जानना चाहता हूँ कि उन्हे किसने निर्वासित किया?

चाणक्य---जान जाओगे तो उसका वध करोगे! क्यो?

[हँसता है]

चन्द्र०—हँसिए मत ! गुरुदेव ! आपकी मर्य्यादा रखनी चाहिये, यह मैं जानता हूँ। परन्तु वे मेरे माता-पिता थे, यह आपको भी जानना चाहिये ।

चाणक्य—तभी तो मैंने उन्हे उपयुक्त अवसर दिया। अब उन्हे आवश्यकता थी शान्ति की, उन्होंने वानप्रस्थाश्रम ग्रहण किया है। इसमें खेद करने की कौन बात है ?

चन्द्र०—यह अक्षुण्ण अधिकार आप कैसे भोग रहे हैं ? केवल साम्राज्य का ही नहीं, देखता हूँ, आप मेरे कुटुम्ब का भी नियत्रण अपने हाथों मे रखना चाहते हैं ।

[**चाणक्य**—चन्द्रगुप्त ! मैं ब्राह्मण हूँ ! मेरा साम्राज्य करुणा का था, मेरा धर्म प्रेम का था। आनन्द-समुद्र मे शान्ति-द्वीप का अधिवासी ब्राह्मण मैं, चन्द्र, सूर्य्य, नक्षत्र मेरे दीप थे, अनन्त आकाश वितान था, शस्यश्यामला कोमला विश्वम्भरा मेरी शय्या थी। बौद्धिक विनोद कर्म्म था, सन्तोष धन था। उस अपनी, ब्राह्मण की, जन्मभूमि को छोडकर कहाँ आ गया ! सौहार्द्र के स्थान पर कुचक्र ; फूलों के प्रतिनिधि काँटे, प्रेम के स्थान मे भय। ज्ञानामृत के परिवर्तन मे कुमत्रणा। पतन और कहाँ तक हो सकता है ! ले लो मौर्य्य चन्द्रगुप्त ! अपना अधिकार, छीन लो। यह मेरा पुनर्जन्म होगा। मेरा जीवन राजनीतिक कुचक्रो से कुत्सित और कलंकित हो उठा है। किसी छायाचित्र, किसी काल्पनिक महत्त्व के पीछे भ्रमपूर्ण अनुसधान करता दौड रहा हूँ ! शान्ति खो गई, स्वरूप विस्मृत हो गया ! जान गया, मैं कहाँ और कितने नीचे हूँ !]

(**प्रस्थान**)

चन्द्र०—जाने दो। (**दीर्घ निश्वास लेकर**)—तो क्या मैं असमर्थ हूँ ? ऊँह, सब हो जायगा !

सिंहरण—(**प्रवेश करके**) सम्राट् की जय हो ! कुछ विद्रोही और षड्यत्रकारी पकडे गए है। एक बडी दुखद घटना भी हो गई है !

चन्द्रगुप्त—(**चौंक कर**)—क्या ?

सिंह०—मालविका की हत्या.... (गद्‌गद् कंठ से)—आपका परिच्छद पहनकर वह आप ही की शय्या पर लेटी थी।

चन्द्रगुप्त—तो क्या, उसने इसीलिए मेरे शयन का प्रबंध दूसरे प्रकोष्ठ मे किया ! आह ! मालविका !

सिंह०—आर्य्य चाणक्य की सूचना पाकर नायक पूरे गुल्म के साथ राजमन्दिर की रक्षा के लिए प्रस्तुत था। एक छोटा-सा युद्ध होकर वे हत्यारे पकडे गये। परन्तु उनका नेता राक्षस निकल भागा।

चन्द्र०— क्या ! राक्षस उनका नेता था ?

सिंह०—हाँ सम्राट् ! गुरुदेव बुलाए जायँ ?

चन्द्र०—नही तो नही हो सकता, वे चले गये ! कदाचित् न लौटेंगे।

सिंह०—ऐसा क्यो ? क्या आपने कुछ कह दिया ?

चन्द्रगुप्त—हाँ सिंहरण ! मैंने अपने माता-पिता के चले जाने का कारण पूछा था !

सिंह०—(निःश्वास लेकर)—तो नियति कुछ अदृष्ट का सृजन कर रही है ! सम्राट्, मैं गुरुदेव को खोजने जाता हूँ !

चन्द्रगुप्त—(विरक्ति से)—जाओ, ठीक है—अधिक हर्ष, अधिक उन्नति के बाद ही तो अधिक दुःख और पतन की बारी आती है !

[सिंहरण का प्रस्थान]

चन्द्र०—पिता गये, माता गई, गुरुदेव गये, कन्धे से कन्धा भिडाकर प्राण देनेवाला चिर-सहचर सिंहरण गया ! तो भी चन्द्रगुप्त को रहना पडेगा, और रहेगा, परन्तु मालविका ! आह, वह स्वर्गीय कुसुम !

[चिन्तित भाव से प्रस्थान]

६

सिन्धु-तट—पर्णकुटीर। चाणक्य और कात्यायन

चाणक्य—कात्यायन, सो नही हो सकता! मैं अब मंत्रित्व नही ग्रहण करने का। तुम यदि किसी प्रकार मेरा रहस्य खोल दोगे, तो मगध का अनिष्ट ही करोगे।

कात्या०—तब मैं क्या करूँ? चाणक्य, मुझे तो अब इस राज-काज मे पड़ना अच्छा नहीं लगता।

चाणक्य—जब तक गांधार का उपद्रव है, तब तक तुम्हे बाध्य होकर करना पड़ेगा। बताओ, नया समाचार क्या है?

कात्या०—राक्षस सिल्यूकस की कन्या को पढ़ाने के लिए वही रहता है और यह सारा कुचक्र उसी का है। वह इन दिनो बाल्हीक की ओर गया है। मैं अपना वार्तिक पूरा कर चुका, इसीलिए मगध से अवकाश लेकर आया था। चाणक्य, अब मैं मगध जाना चाहता हूँ। यवन-शिविर मे अब मेरा जाना असंभव है।

चाणक्य—जितना शीघ्र हो सके, मगध पहुँचो। मैं सिंहरण को ठीक रखता हूँ। तुम चन्द्रगुप्त को भेजो। सावधान, उसे न मालूम हो कि मैं यहाँ हूँ। अवसर पर मैं स्वयं उपस्थित हो जाऊँगा। देखो, शकटार और तुम्हारे भरोसे मगध रहा है। कात्यायन, यदि सुवासिनी को भेजते तो कार्य मे आशातीत सफलता होती। समझे?

कात्यायन—(हँसकर)—यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई कि तुम......सुवासिनी अच्छा........विष्णुगुप्त! गार्हस्थ्य जीवन कितना सुन्दर है!

चाणक्य—मूर्ख हो, अब हम-तुम साथ ही ब्याह करेंगे।

कात्यायन—मैं? मुझे नही......मेरी गृहिणी तो है।

चाणक्य—(हँसकर)—एक ब्याह और सही। अच्छा बताओ, काम कहाँ तक हुआ?

कात्यायन—(पत्र देता हुआ)—हाँ, यह लो, यवन-शिविर का विवरण है। परन्तु, विष्णुगुप्त, एक बात कहे बिना न रह सकूँगा। यह यवन-बाला सिर से पैर तक आर्य्य-संस्कृति में पगी है। उसका अनिष्ट ?

चाणक्य—(हँस कर)—कात्यायन, तुम सच्चे ब्राह्मण हो! यह करुणा और सौहार्द्र का उद्रेक ऐसे ही हृदयों में होता है। परन्तु—मैं निष्ठुर! हृदयहीन! मुझे तो केवल अपने हाथों खड़ा किए हुए एक साम्राज्य का दृश्य देख लेना है।

कात्यायन—फिर भी चाणक्य, उसका सरल मुखमण्डल! उस लक्ष्मी का अमंगल!

चाणक्य—(हँस कर)—तुम पागल तो नहीं हो गए हो ?

कात्यायन—तुम हँसो मत चाणक्य! तुम्हारा हँसना तुम्हारे क्रोध से भी भयानक है! प्रतिज्ञा करो कि उसका अनिष्ट न करूँगा। बोलो!

चाणक्य—कात्यायन! अलक्षेन्द्र कितने विकट परिश्रम से भारतवर्ष के बाहर किया गया—यह तुम भूल गए ? अभी है कितने दिनों की बात। अब इस सिल्युकस को क्या हुआ जो चला आया! तुम नहीं जानते कात्यायन, इसी सिल्युकस ने चन्द्रगुप्त की रक्षा की थी! नियति अब उन्हीं दोनों को एक-दूसरे के विपक्ष में खड्ग खींचे हुए खड़ा कर रही है!

कात्यायन—कैसे आश्चर्य की बात है!

चाणक्य—परन्तु इससे क्या! वह तो होकर रहेगा, जिसे मैंने स्थिर कर लिया है! वर्तमान भारत की नियति मेरे हृदय पर जलद-पटल में बिजली के समान नाच उठती है! फिर मैं क्या करूँ ?

कात्या०—तुम निष्ठुर हो!

चाणक्य—अच्छा, तुम सदय होकर एक बात कर सकोगे ? बोलो! चन्द्रगुप्त और उस यवन-बाला के परिणय में आचार्य्य बनोगे ?

कात्या०—क्या कह रहे हो ? यह हँसी!

चाणक्य—यही है तुम्हारी दया की परीक्षा—देखूं, तुम क्या करते हो! क्या इसमें यवन-बाला का अमंगल है ?

कात्या०—(सोचकर)—मगल है ; मै प्रस्तुत हूँ ।

चाणक्य—(हँसकर)—तव तुम निश्चय ही एक सहृदय व्यक्ति हो !

कात्या०—अच्छा तो मै जाता हूँ ।

चाणक्य—हॉ जाओ । स्मरण रखना, हम लोगो के जीवन मे यह अतिम सघर्ष है ! मुझे आज आम्भीक से मिलना है । यह लोलुप राजा, देखूँ, क्या करता है !

[कात्यायन का प्रस्थान—चर का प्रवेश]

चर—महामात्य की जय हो !

चाणक्य—इस समय जय की वडी आवश्यकता है । आम्भीक को यदि जय कर सका, तो सर्वत्र जय है ! वोलो, आम्भीक ने क्या कहा ?

चर—वे स्वयं आ रहे है ।

चाणक्य—आने दो, तुम जाओ ।

[चर का प्रस्थान—आम्भीक का प्रवेश]

आम्भीक—प्रणाम, ब्राह्मण देव !

चाणक्य—कल्याण हो । राजन्, तुम्हे भय तो नही लगता ? मै एक दुर्नाम मनुष्य हूँ !

आम्भीक—नही आर्य्य, आप कैसी वात कहते है !

चाणक्य—तो ठीक है। स्मरण है, इसी तक्षशिला के मठ मे एक दिन मैने कहा था—'सो कैसे होगा अविश्वासी क्षत्रिय ! तभी तो म्लेच्छ लोग साम्राज्य वना रहे है और आर्य्य-जाति पतन के कगार पर खडी एक धक्के की राह देख रही है।'

आम्भीक—स्मरण है ।

चाणक्य—तुम्हारी भूल ने कितना कुत्सित दृश्य दिखाया—इसे भी सम्भवत तुम न भूले होगे ।

आम्भीक—नही ।

चाणक्य—तुम जानते हो कि चन्द्रगुप्त ने दक्षिणापथ के स्वर्णगिरि से पञ्चनद तक, सौराष्ट्र से वंग तक एक महान् साम्राज्य स्थापित किया

है। यह **साम्राज्य मगध** का नही है, यह आर्य्य-साम्राज्य है। उत्तरापथ के सब प्रमुख गणतन्त्र मालव, क्षुद्रक और यौधेय आदि सिंहरण के नेतृत्व मे इस साम्राज्य के अग है। केवल तुम्ही इससे अलग हो! इस द्वितीय यवन-आक्रमण से तुम भारत के द्वार की रक्षा कर लोगे, या पहले ही के समान उत्कोच लेकर, द्वार खोलकर, सब झझटो से अलग हो जाना चाहते हो ?

आम्भीक—आर्य्य, वही त्रुटि बार-बार न होगी!

चाणक्य—तब साम्राज्य झेलम-तट की रक्षा करेगा। सिन्धु-तट का भार तुम्हारे ऊपर रहा!

आम्भीक—अकेले मै यवनो का आक्रमण रोकने मे असमर्थ हूँ!

चाणक्य—फिर उपाय क्या है ?

[**नेपथ्य से जयघोष। आम्भीक चकित होकर देखने लगता है।**]

चाणक्य—क्या है, सुन रहे हो ?

आम्भीक—समझ मे नही आया। (**नेपथ्य की ओर देखकर**) वह एक स्त्री आगे-आगे कुछ गाती हुई आ रही है और उसके साथ बडी-सी भीड—(**कोलाहल समीप होता है**)।

चाणक्य—आओ हम लोग अलग हट कर देखे। (**दोनो अलग छिप जाते है**)

[**आर्य्य-पताका लिए अलका का गाते हुए, भीड़ के साथ प्रवेश**]

अलका—तक्षशिला के वीर नागरिको! एक बार, अभी-अभी सम्राट् चन्द्रगुप्त ने इसका उद्धार किया था, आर्य्यावर्त्त—प्यारा देश—ग्रीको की विजय-लालसा से पुन पद-दलित होने जा रहा है, तब तुम्हारा शासक तटस्थ रहने का ढोग करके पुण्यभूमि को परतंत्रता की शृखला पहनाने का दृश्य राजमहल के झरोखो से देखेगा। तुम्हारा राजा कायर है, और तुम ?

नागरिक—हम लोग उसका परिणाम देख चुके है माँ! हम लोग प्रस्तुत है।

अलका—यही तो—(**समवेत स्वर से गायन**)

हिमाद्रि तुंग शृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती—
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतन्त्रता पुकारती—
"अमर्त्य वीरपुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है—बढ़े चलो, बढ़े चलो ॥"
असंख्य कीर्तिरश्मियाँ,
विकीर्ण दिव्य दाह-सी।
सपूत मातृभूमि के—
रुको न शूर साहसी !
अराति सैन्य सिन्धु में—सुवाडवाग्नि से जलो,
प्रवीर हो जयी बनो—बढ़े चलो, बढ़े चलो !

[**सब का प्रस्थान**]

आम्भीक—यह अलका है ! तक्षशिला में उत्तेजना फैलाती हुई—यह अलका !

चाणक्य—हाँ, आम्भीक ! तुम उसे बन्दी बनाओ, मुँह बन्द करो !

आम्भीक—(**कुछ सोचकर**) असम्भव ! मैं भी साम्राज्य में सम्मिलित होऊँगा।

चाणक्य—यह मैं कैसे कहूँ ? मेरी लक्ष्मी—अलका—ने आर्य्यगौरव के लिए क्या-क्या कष्ट नहीं उठाए ! वह भी तो इसी वंश की बालिका है ! फिर तुम तो पुरुष हो, तुम्हीं सोचकर देखो।

आम्भीक—व्यर्थ का अभिमान अब मुझे देश के कल्याण में बाधक न सिद्ध कर सकेगा। आर्य्य चाणक्य, मैं आर्य्य-साम्राज्य के बाहर नहीं हूँ !

चाणक्य—जब तक्षशिला-दुर्ग पर मगध-सेना अधिकार करेगी ! यह तुम सहन करोगे ?

[आम्भीक सिर नीचा करके विचारता है]

चाणक्य—क्षत्रिय ! कह देना और बात है, करना और।

आम्भीक—(**आवेश में**)—हार चुका ही हूँ, पराधीन हो ही चुका हूँ। अब स्वदेश के अधीन होने में उससे अधिक कलक तो मुझे लगेगा नहीं, आर्य्य चाणक्य !

चाणक्य—तो इस गांधार और पंचनद का शासन-सूत्र होगा अलका के हाथ में और तक्षशिला होगी उसकी राजधानी, बोलो स्वीकार है ?

आम्भीक—अलका ?

चाणक्य—हाँ, अलका ! और सिंहरण इस महाप्रदेश के शासक होंगे।

आम्भीक—सब स्वीकार है, ब्राह्मण ! मैं केवल एक बार यवनों के सन्मुख अपना कलंक धोने का अवसर चाहता हूँ। रण-क्षेत्र में एक सैनिक होना चाहता हूँ ! और कुछ नहीं।

चाणक्य—तुम्हारा अभीष्ट पूर्ण हो !

[**संकेत करता है—सिंहरण और अलका का प्रवेश**]

अलका—भाई ! आम्भीक !

आम्भीक—बहन ! अलका ! तू छोटी है, पर मेरी श्रद्धा का आधार है। मैं भूल करता था बहन ! तक्षशिला के लिए अलका पर्य्याप्त है, आम्भीक की आवश्यकता न थी !

अलका—भाई, क्या कहते हो !

आम्भीक—मैं देश-द्रोही हूँ ! नीच हूँ ! अधम हूँ ! तूने गांधार के राजवंश का मुख उज्ज्वल किया है ! राज्यासन के योग्य तू ही है।

अलका—भाई ! अब भी तुम्हारा भ्रम नहीं गया ! राज्य किसी का नहीं है, सुशासन का है ! जन्मभूमि के भक्तों में आज जागरण है। देखते नहीं, प्राच्य में सूर्योदय हुआ है ! स्वयं सम्राट् चन्द्रगुप्त तक इस महान् आर्य्य-साम्राज्य के सेवक हैं। स्वतन्त्रता के युद्ध में सैनिक और सेनापति का भेद नहीं। जिसकी खड्ग-प्रभा में विजय का आलोक चमकेगा, वही वरेण्य है। उसी की पूजा होगी। भाई ! तक्षशिला मेरी नहीं

और तुम्हारी भी नही, तक्षशिला आर्य्यावर्त्त का एक भूभाग है; वह आर्य्यावर्त्त की होकर ही रहे, इसके लिए मर मिटो! फिर उसके कणों मे तुम्हारा ही नाम अंकित होगा। मेरे पिता स्वर्ग मे इन्द्र से प्रतिस्पर्धा करेंगे। वहाँ की अप्सराएँ विजयमाला लेकर खडी होंगी, सूर्यमण्डल मार्ग बनेगा और उज्ज्वल आलोक से मण्डित होकर गांधार का राजकुल अमर हो जायगा!

चाणक्य—साधु! अलके, साधु!

आम्भीक—(**खड्ग खींचकर**)—खड्ग की शपथ—मैं कर्त्तव्य से च्युत न होऊँगा!

सिंहरण—(**उसे आलिंगन करके**)—मित्र आम्भीक! मनुष्य साधारण-धर्मा पशु है, विचारशील होने से मनुष्य होता है और नि:स्वार्थ कर्म करने से वही देवता भी हो सकता है।

[**आम्भीक का प्रस्थान**]

सिंह०—अलका, सम्राट् किस मानसिक वेदना मे दिन बिताते होंगे?

अलका—वे वीर हैं मालव, उन्हे विश्वास है कि मेरा कुछ कार्य्य है, उसकी साधना के लिए प्रकृति, अदृष्ट, दैव या ईश्वर, कुछ-न-कुछ अवलम्ब जुटा ही देगा! सहायक चाहे आर्य्य चाणक्य हो या मालव!

सिंह०—अलका, उस प्रचण्ड पराक्रम को मैं जानता हूँ। परन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि सम्राट् मनुष्य है। अपने से बार-बार सहायता करने के लिए कहने मे, मानव-स्वभाव विद्रोह करने लगता है। यह सौहार्द्र और विश्वास का सुन्दर अभिमान है। उस समय मन चाहे अभिनय करता हो संघर्ष से बचने का, किन्तु जीवन अपना संग्राम अन्ध होकर लडता है। कहता है—अपने को बचाऊँगा नही, जो मेरे मित्र हो, आवें और अपना प्रमाण दें।

(**दोनों का प्रस्थान**)

[**सुवासिनी का प्रवेश**]

चाणक्य—सुवासिनी, तुम यहाँ कैसे?

सुवा०—सम्राट् को अभी तक आपका पता नही, पिताजी ने इसीलिए मुझे भेजा है। उन्होने कहा—जिस खेल को आरम्भ किया है, उसका पूर्ण और सफल अन्त करना चाहिए।

चाणक्य—क्यो करे सुवासिनी, तुम राक्षस से साथ सुखी जीवन बिताओगी, यदि इतनी भी मुझे आशा होती........वह तो यवन-सेनानी है, और तुम मगध की मन्त्रि-कन्या ! क्या उससे परिणय कर सकोगी ?

सुवा०—(**निःश्वास लेकर**)—राक्षस से ! नही, असभव। चाणक्य, तुम इतने निर्दय हो !

चाणक्य—(**हँसकर**)—सुवासिनी ! वह स्वप्न टूट गया—इस विजन बालुका-सिन्धु मे एक सुधा की लहर दौड़ पडी थी, किन्तु तुम्हारे एक भ्रू भग ने उसे लौटा दिया ! मै कगाल हूँ (**ठहरकर**)—सुवासिनी ! मैं तुम्हे दण्ड दूँगा। चाणक्य की नीति मे अपराधो के दड से कोई मुक्त नही।

सुवा०—क्षमा करो विष्णुगुप्त !

चाणक्य—असम्भव है। तुम्हे राक्षस से व्याह करना ही होगा, इसी मे हमारा, तुम्हारा और मगध का कल्याण है।

सुवा०—निष्ठुर ! निर्दय !!

चाणक्य—(**हँसकर**)—तुम्हे अभिनय भी करना पडेगा। उसमे समस्त सञ्चित कौशल का प्रदर्शन करना होगा। सुवासिनी, तुम्हे वन्दिनी बन कर ग्रीक-शिविर मे राक्षस और राजकुमारी के पास पहुँचना होगा—राक्षस को देशभक्त बनाने के लिए और राजकुमारी की पूर्वस्मृति मे आहुति देने के लिए। कार्नेलिया चन्द्रगुप्त से परिणीता होकर सुखी हो सकेगी कि नही, इसकी परीक्षा करनी होगी।

[**सुवासिनी सिर पकड़ कर बैठ जाती है**]

चाणक्य—(**उसके सिर पर हाथ रखकर**)—सुवासिनी ! तुम्हारा प्रणय, स्त्री और पुरुष के रूप मे केवल राक्षस से अकुरित हुआ, और

शैशव का वह सब, केवल हृदय की स्निग्धता थी। आज किसी कारण से राक्षस का प्रणय द्वेष मे बदल रहा है ; परन्तु काल पाकर वह अकुर हरा-भरा और सफल हो सकता है ! चाणक्य यह नही मानता कि कुछ असम्भव है। तुम राक्षस से प्रेम करके सुखी हो सकती हो, क्रमश उस प्रेम का सच्चा विकास हो सकता है। और मै, अभ्यास करके तुमसे उदासीन हो सकता हूँ, यही मेरे लिए अच्छा होगा। मानव-हृदय में यह भाव-सृष्टि तो हुआ ही करती है। यही हृदय का रहस्य है, तब हम लोग जिस सृष्टि मे स्वतत्र हो, उसमे परवशता, क्यो माने ? मै क्रूर हूँ, केवल वर्तमान के लिए; भविष्य के सुख और शान्ति के लिए, परिणाम के लिए नही। श्रेय के लिए, मनुष्य को सब त्याग करना चाहिए , सुवासिनी ! जाओ !

सुवा०—(**दीनता से चाणक्य का मुंह देखती है**)—तो विष्णुगुप्त, तुम इतना बडा त्याग करोगे ! अपने हाथो बनाया हुआ, इतने बडे साम्राज्य का शासन हृदय की आकाक्षा के साथ अपने प्रतिद्वन्द्वी को सौप दोगे ! और सो भी मेरे लिए !

चाणक्य—(**घबड़ा कर**)—मै बडा विलम्ब कर रहा हूँ ! सुवासिनी, आर्य्य दाण्डचायन के आश्रम मे पहुँचने के लिए मै पथ भूल गया हूँ ! मेघ के समान मुक्त वर्षा-सा जीवन-दान, सूर्य्य के समान अबाध आलोक विकीर्ण करना , सागर के समान कामना—नदियो को पचाते हुए सीमा के बाहर न जाना , यही तो ब्राह्मण का आदर्श है। मुझे चन्द्रगुप्त को मेघमुक्त चन्द्र देखकर, इस रंग-मञ्च से हट जाना है !

सुवा०—महापुरुष ! मै नमस्कार करती हूँ। विष्णुगुप्त, तुम्हारी बहन तुमसे आशीर्वाद की भिखारिन है। (**चरण पकड़ती है**)

चाणक्य—(सजल नेत्र से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए)—सुखी रहो।

[प्रस्थान]

७

कपिशा में एलेक्जेंड्रिया का राजमन्दिर

[कार्नेलिया और उसकी सखी का प्रवेश]

कार्ने०—बहुत दिन हुए देखा था !—वही भारतवर्ष ! वही निर्मल ज्योति का देश, पवित्र भूमि, अब हत्या और लूट से वीभत्स बनाई जायगी—ग्रीक सैनिक इस शस्यश्यामला पृथ्वी को रक्त-रञ्जित बनावेगे ! पिता अपने साम्राज्य से सन्तुष्ट नही, आशा उन्हे दौडावेगी। पिशाची की छलना मे पडकर लाखो प्राणियो का नाश होगा। और, सुना है यह युद्ध होगा चन्द्रगुप्त से !

सखी—सम्राट् तो आज स्कन्धावार मे जानेवाले है !

[राक्षस का प्रवेश]

राक्षस—आयुष्मती ! मै आ गया।

कार्ने०—नमस्कार ! तुम्हारे देश मे तो सुना है कि ब्राह्मण जाति बडी तपस्वी और त्यागी है।

राक्षस—हॉ कल्याणी, वह मेरे पूर्वजो का गौरव है। किन्तु हम लोग तो बौद्ध है।

कार्ने०—और तुम उसके ध्वसावशेष हो। मेरे यहाँ ऐसे ही लोगों को देशद्रोही कहते है। तुम्हारे यहाँ इसे क्या कहते है ?

राक्षस—राजकुमारी ! मै कृतघ्न नही, मेरे देश मे कृतज्ञता पुरुषत्व का चिह्न है। जिसके अन्न से जीवन-निर्वाह होता है, उसका कल्याण ....

कार्ने०—कृतज्ञता पाश है, मनुष्य की दुर्बलताओ के फदे उसे और भी दृढ करते है। परन्तु जिस देश ने तुम्हारा पालन-पोषण करके पूर्व उपकारो का बोझ तुम्हारे ऊपर डाला है, उसे विस्मृत करके क्या तुम कृतघ्न नही हो रहे हो ? सुकरात का तर्क तुमने पढा है ?

राक्षस—तर्क और राजनीति मे भेद है, मैं प्रतिशोध चाहता हूं। राजकुमारी ! कर्णिक ने कहा है—

कार्ने०—कि सर्वनाश कर दो ! यदि ऐसा है, तो मैं तुम्हारी राज-नीति नही पढना चाहती।

राक्षस—पाठ थोड़ा अवशिष्ट है। उसे भी समाप्त कर लीजिए, आपके पिता की आज्ञा है।

कार्ने०—मै तुम्हारे उशना और कणिक से ऊब गई हूँ, जाओ !

[राक्षस का प्रस्थान]

कार्ने०—एलिस ! इन दिनो जो ब्राह्मण मुझे रामायण पढाता था, वह कहाँ गया ? उसने व्याकरण पर अपनी नई टिप्पणी प्रस्तुत की है। वह कितना सरल और विद्वान् है !

एलिस—वह चला गया राजकुमारी !

कार्ने०—वडा ही निर्लोभी सच्चा ब्राह्मण था। (**सिल्यूकस का प्रवेश**)—अरे पिता जी !

सिल्यू०—हाँ बेटी ! अब तुमने अध्ययन बन्द कर दिया, ऐसा क्यो ? अभी वह राक्षस मुझसे कह रहा था।

कार्ने०—पिताजी ! उसके देश ने उसका नाम कुछ समझ कर ही रक्खा है—राक्षस ! मै उससे डरती हूँ।

सिल्यू०—वडा विद्वान् है बेटी ! मै उसे भारतीय प्रदेश का क्षत्रप बनाऊँगा।

कार्ने०—पिताजी ! वह पाप की मलिन छाया है। उसके भँवो मे कितना अन्धकार है, आप देखते नही। उससे अलग रहिये। विश्राम लीजिये। विजयो की प्रवंचना मे अपने को न हारिये। महत्त्वाकाक्षा के दाँव पर मनुष्यता सदैव हारी है। डिमास्थनीज ने.........

सिल्यू०—मुझे दार्शनिको से तो विरक्ति हो गई है। क्या ही अच्छा होता कि ग्रीस मे दार्शनिक न उत्पन्न होकर, केवल योद्धा ही होते !

कार्ने०—सो तो होता ही है। मेरे पिता किससे कम वीर है। मेरे विजेता पिता ! मै भूल करती हूँ, क्षमा कीजिये।

सिल्यू०—यही तो मेरी बेटी ! ग्रीक-रक्त वीरता के परमाणु

से संगठित है। तुम चलोगी युद्ध देखने ? सिन्धु-तट के स्कन्धावार मे रहना।

कार्ने०—चलूँगी।

सिल्यू०—अच्छा तो प्रस्तुत रहना। आम्भीक—तक्षशिला का राजा—इस युद्ध मे तटस्थ रहेगा, आज उसका पत्र आया है। और राक्षस कहता था कि चाणक्य—चन्द्रगुप्त का मत्री—उससे क्रुद्ध होकर कही चला गया है। पचनद मे चन्द्रगुप्त का कोई सहायक नही। बेटी, सिकन्दर से बडा साम्राज्य—उससे बडी विजय! कितना उज्ज्वल भविष्य है।

कार्ने०—हाँ पिता जी।

सिल्यू०—हाँ पिता जी!—उल्लास की रेखा भी नही—इतनी उदासी! तू पढना छोड दे। मै कहता हूँ कि तू दार्शनिक होती जा रही है—ग्रीक-रक्त!

कार्ने०—वही तो कह रही हूँ। आप ही तो कभी पढने के लिए कहते है, कभी छोडने के लिए।

सिल्यू०—तब ठीक है, मैं ही भूल कर रहा हूँ।

[प्रस्थान]

८

पथ में चन्द्रगुप्त और सैनिक

चन्द्र०—पचनद का नायक कहाँ है ?

एक सैनिक—वह आ रहे हैं, देव !

[नायक का प्रवेश]

नायक—जय हो देव !

चन्द्र०—सिंहरण कहाँ ?

[नायक विनम्र होकर पत्र देता है, पत्र पढ़ कर उसे फाड़ते हुए]

चन्द्र०—हूँ ! सिंहरण इस प्रतीक्षा में है कि कोई बलाधिकृत जाय तो वे अपना अधिकार सौंप दे। नायक ! तुम खड्ग पकड सकते हो, और उसे हाथ मे लिए सत्य से विचलित तो नही हो सकते ? बोलो, चन्द्रगुप्त के नाम से प्राण दे सकते हो ? मैंने प्राण देनेवाले वीरो को देखा है। चन्द्रगुप्त युद्ध करना जानता है। और विश्वास रक्खो, उसके नाम का जय-घोप विजयलक्ष्मी का मगल-गान है ! आज से मै ही बलाधिकृत हूँ, मै आज सम्राट् नही, सैनिक हूँ ! चिन्ता क्या ? सिंहरण और गुरुदेव न साथ दे, डर क्या ! सैनिको ! सुन लो, आज से मै केवल सेनापति हूँ, और कुछ नही ! जाओ, यह लो मुद्रा और सिंहरण को छुट्टी दो। कह देना कि 'तुम दूर खडे होकर देख लो सिंहरण ! चन्द्रगुप्त कायर नही है।' जाओ।

[नायक जाने लगता है]

चन्द्र०—ठहरो ! आम्भीक की क्या लीला है ?

नायक—आम्भीक ने यवनो मे कहा है कि ग्रीक-सेना मेरे राज्य मे जा सकती है, परन्तु युद्ध के लिए सैनिक न दूँगा, क्योकि मै उन पर स्वयं विश्वास नही करता।

चन्द्र०—और वह कर ही क्या सकता था ! कायर ! अच्छा जाओ, देखो, वितस्ता के उस पार हम लोगो को शीघ्र पहुँचना चाहिए। तुम सैन्य लेकर मुझसे वही मिलो।

[**नायक का प्रस्थान**]

एक सैनिक—मुझे क्या आज्ञा है, मगध जाना होगा ?

चन्द्र०—आर्य्य शकटार को पत्र देना, और सब समाचार सुना देना। मैंने लिख तो दिया है, परन्तु तुम भी उनसे इतना कह देना कि इस समय मुझे सैनिक और शस्त्र तथा अन्न चाहिए। देश मे डौडी फेर दे कि आर्य्यावर्त्त मे शस्त्र ग्रहण करने मे जो समर्थ है, सैनिक है और जितनी सम्पत्ति है, युद्ध-विभाग की है। जाओ।

[**सैनिक का प्रस्थान**]

दूसरा०—शिविर आज कहाँ रहेगा देव ?

चन्द्र०—अश्व की पीठ पर सैनिक! कुछ खिला दो, और अश्व बदलो। एक क्षण विश्राम नही। हाँ ठहरो तो, सब सेना-निवेशो में आज्ञापत्र भेज दिए गये ?

दूसरा०—हाँ देव !

चन्द्र०—तो अब मै बिजली से भी शीघ्र पहुँचना चाहता हूँ। चलो, शीघ्र प्रस्तुत हो।

[**सब का प्रस्थान**]

चन्द्र०—(**आकाश की ओर देख कर**)—अदृष्ट! खेल न करना! चन्द्रगुप्त मरण से भी अधिक भयानक को आलिगन करने के लिए प्रस्तुत है! विजय—मेरे चिर सहचर!

[**हँसते हुए प्रस्थान**]

९

ग्रीक-शिविर

कार्नें०—एलिस ! यहाँ आने पर जैसे मन उदास हो गया है। इस सन्ध्या के दृश्य ने मेरी तन्मयता मे एक स्मृति की सूचना दी है। सरला सन्ध्या, पक्षियो के नाद से शान्ति को वुलाने लगी है। देखते-देखते, एक-एक करके दो-चार नक्षत्र उदय होने लगे। जैसे प्रकृति, अपनी सृष्टि की रक्षा, हीरो की कील से जडी हुई काली ढाल लेकर कर रही है और पवन किसी मधुर कथा का भार लेकर मचलता हुआ जा रहा है। यह कहाँ जायगा एलिस !

एलिस—अपने प्रिय के पास !

कार्नें०—दुर ! तुझे तो प्रेम-ही-प्रेम सूझता है।

[**दासी का प्रवेश**]

दासी—राजकुमारी ! एक स्त्री वन्दी होकर आई है।

कार्नें०—(**आश्चर्य से**)—तो उसे पिताजी ने मेरे पास भेजा होगा, उसे शीघ्र ले आओ !

[**दासी का प्रस्थान ; सुवासिनी का प्रवेश**]

कार्नें०—तुम्हारा नाम क्या है ?

सुवा०—मेरा नाम सुवासिनी है। मै किसी को खोजने जा रही थी, सहसा वन्दी कर ली गई। वह भी कदाचित् आपके यहाँ वन्दी हो !

कार्नें०—उसका नाम ?

सुवा०—राक्षस।

कार्नें०—ओहो, तुमने उससे व्याह कर लिया है क्या ? तव तो तुम सचमुच अभागिनी हो !

सुवा०—(**चौंककर**)—ऐसा क्यो ? अभी तो व्याह होनेवाला है, क्या आप उसके सम्वन्ध मे कुछ जानती है ?

कार्नें०—बैठो, बताओ, तुम वन्दी वन कर रहना चाहती हो, या मेरी सखी ? झटपट बोलो !

सुवा०—वन्दी बनकर तो आई हूँ, यदि सखी हो जाऊँ तो अहोभाग्य !

कार्ने०—प्रतिज्ञा करनी होगी कि मेरी अनुमति के विना तुम व्याह न करोगी !

सुवा०—स्वीकार है ।

कार्ने०—अच्छा, अपनी परीक्षा दो, बताओ, तुम विवाहिता स्त्रियो को क्या समझती हो ?

सुवा०—वनियो के प्रमोद का कटा-छँटा हुआ शोभावृक्ष । कोई डाली उल्लास के आगे बढी, कुतर दी गई ! माली के मन से सँवरे हुए गोल-मटोल खडे रहो !

कार्ने०—वाह, ठीक कहा । यही तो मै भी सोचती थी । क्यो एलिस ! अच्छा, यौवन और प्रेम को क्या समझती हो ?

सुवा०—अकस्मात् जीवन-कानन मे, एक राका-रजनी की छाया मे छिप कर मधुर वसन्त घुस आता है । शरीर की सब क्यारियाँ हरी-भरी हो जाती है । सौन्दर्य का कोकिल—'कौन ?' कहकर सब को रोकने-टोकने लगता है, पुकारने लगता है । राजकुमारी ! फिर उसी मे प्रेम का मुकुल लग जाता है, आँसू-भरी स्मृतियाँ मकरद-सी उसमे छिपी रहती है ।

कार्ने०—(**उसे गले लगाकर**)—आह सखी ! तुम तो कवि हो । तुम प्रेम करना जानती हो और जानती हो उसका रहस्य । तुमसे हमारी पटेगी । एलिस ! जा, पिताजी से कह दे, कि मैने उस स्त्री को अपनी सखी बना लिया ।

[एलिस का प्रस्थान]

सुवा०—राजकुमारी ! प्रेम मे स्मृति का ही सुख है । एक टीस उठती है, वही तो प्रेम का प्राण है । आश्चर्य तो यह है कि प्रत्येक कुमारी के हृदय मे वह निवास करती है । पर, उसे सब प्रत्यक्ष नही कर सकती, सब को उसका मार्मिक अनुभव नही होता ।

कार्ने०—तुम क्या कहती हो ?

सुवा०—यही स्त्री-जीवन का सत्य है। जो कहती है कि मैं नही जानती—वह दूसरे को तो धोखा देती ही है, अपने को भी प्रवंचित करती है! धधकते हुए रमणी-वक्ष पर हाथ रखकर उसी कम्पन मे स्वर मिला कर कामदेव गाता है। और राजकुमारी! वही काम-संगीत की तान सौन्दर्य की रगीन लहर बनकर, युवतियो के मुख मे लज्जा और स्वास्थ्य की लाली चढाया करती है।

कार्ने०—सखी! मदिरा की प्याली मे तू स्वप्न-सी लहरो को मत आन्दोलित कर। स्मृति बडी निष्ठुर है। यदि प्रेम ही जीवन का सत्य है, तो ससार ज्वालामुखी है!

[सिल्यूकस का प्रवेश]

सिल्यू०—तो बेटी, तुमने इसे अपने पास रख ही लिया! मन बहलेगा, अच्छा तो है। मैं भी इसी समय जा रहा हूँ, कल ही आक्रमण होगा। देखो, सावधान रहना।

कार्ने०—किस पर आक्रमण होगा पिताजी?

सिल्यू०—चन्द्रगुप्त की सेना पर। वितस्ता के इस पार सेना आ पहुँची है, अब युद्ध मे विलम्ब नही।

कार्ने०—पिताजी, उसी चन्द्रगुप्त से युद्ध होगा, जिसके लिए उस साधु ने भविष्यवाणी की थी? वही तो भारत का राजा हुआ न?

सिल्यू०—हाँ बेटी, वही चन्द्रगुप्त।

कार्ने०—पिताजी, आप ही ने मृत्यु-मुख से उसका उद्धार किया था और उसी ने आपके प्राणो की रक्षा की थी?

सिल्यू०—हाँ, वही तो।

कार्ने०—और उसी ने आपकी कन्या के सम्मान की रक्षा की थी? —फिलिप्स का वह अशिष्ट आचरण पिताजी!

सिल्यू०—तभी तो बेटी, मैंने साइबर्टियस को दूत बनाकर समझाने के लिए भेजा था। किन्तु उसने उत्तर दिया कि मैं सिल्यूकस का उत्तर

हूँ, तो भी क्षत्रिय हूँ, रणदान जो भी माँगेगा, उसे दूँगा। युद्ध होना अनिवार्य है।

कार्ने०—तब मैं कुछ नही कहती।

सिल्यू०—(**प्यार से**)—तू रूठ गई बेटी। भला अपनी कन्या के सम्मान की रक्षा करने वाले का मैं वध करूँगा!

सुवा०—फिलिप्स को द्वंद्व युद्ध मे सम्राट् चन्द्रगुप्त ने मार डाला। सुना था, इन लोगो का कोई व्यक्तिगत विरोध......

सिल्यू०—चुप रहो, तुम!—(**कार्नेलिया से**)—बेटी, मैं चन्द्रगुप्त को क्षत्रप बना दूँगा, बदला चुक जायगा। मैं हत्यारा नही, विजेता सिल्यूकस हूँ।

[**प्रस्थान**]

कार्ने०—(**दीर्घ निःश्वास लेकर**)—रात अधिक हो गई, चलो सो रहे! सुवासिनी, तुम कुछ गाना जानती हो?

सुवा०—जानती थी, भूल गई हूँ। कोई वाद्य-यन्त्र तो आप न बजाती होगी?—(**आकाश की ओर देखकर**)—रजनी कितने रहस्यो की रानी है—राजकुमारी!

कार्ने०—रजनी! मेरी स्वप्न-सहचरी!

सुवा०—(**गाने लगती है**)—

सखे! वह प्रेममयी रजनी।
आँखो मे स्वप्न बनी,
सखे! वह प्रेममयी रजनी।
कोमल द्रुमदल निष्कम्प रहे,
ठिठका-सा चन्द्र खडा।
माधव सुमनो मे गूँथ रहा,
तारो की किरन-अनी।
सखे! वह प्रेममयी रजनी।

नयनो मे मदिर विलास लिये,
उज्ज्वल आलोक खिला।
हँसती-सी सुरभि सुधार रही,
अलको की मृदुल अनी।
सखे ! वह प्रेममयी रजनी।
मधु मन्दिर-सा यह विश्व बना,
मीठी झनकार उठी।
केवल तुमको थी देख रही—
स्मृतियो की भीड घनी।
सखे ! वह प्रेममयी रजनी।

———

१०

युद्ध-क्षेत्र के समीप चाणक्य और सिंहरण

चाणक्य—तो युद्ध आरम्भ हो गया ?

सिंह०—हाँ आर्य्य ! प्रचण्ड-विक्रम से सम्राट् ने आक्रमण किया है। यवनसेना थर्रा उठी है। आज के युद्ध में प्राणों को तुच्छ गिन कर वे भीम पराक्रम का परिचय दे रहे हैं। गुरुदेव ! यदि कोई दुर्घटना हुई तो ? आज्ञा दीजिये, अब मैं अपने को नहीं रोक सकता। तक्षशिला और मालवों की चुनी हुई सेना प्रस्तुत है, किस समय काम आवेगी !

चाणक्य—जब चन्द्रगुप्त की नासीर सेना का बल क्षय होने लगे और सिन्धु के इस पार की यवनों की समस्त सेना युद्ध में सम्मिलित हो जाय, उसी समय आम्भीक आक्रमण करे। और तुम चन्द्रगुप्त का स्थान ग्रहण करो। दुर्ग की सेना सेतु की रक्षा करेगी, साथ ही चन्द्रगुप्त को सिन्धु के उस पार जाना होगा—यवन-स्कन्धावार पर आक्रमण करने ! समझे ?

(**सिंहरण का प्रस्थान**)

[**चर का प्रवेश**]

चर—क्या आज्ञा है ?

चाणक्य—जब चन्द्रगुप्त की सेना सिन्धु के उस पार पहुँच जाय, तब तुम्हें ग्रीकों के प्रधान-शिविर की ओर उस आक्रमण को प्रेरित करना होगा। चन्द्रगुप्त के पराक्रम की अग्नि में घी डालने का काम तुम्हारा है।

चर—जैसी आज्ञा—(**प्रस्थान**)।

[**दूसरे चर का प्रवेश**]

चर—देव ! राक्षस प्रधान-शिविर में है।

चाणक्य—जाओ, ठीक है। सुवासिनी से मिलते रहो।

(**दोनों का प्रस्थान**)

[**एक ओर से सिल्यूकस, दूसरी ओर से चन्द्रगुप्त**]

सिल्यू०—चन्द्रगुप्त, तुम्हें राजपद की बधाई देता हूँ।

चन्द्र०—स्वागत सिल्यूकस ! अतिथि की-सी तुम्हारी अभ्यर्थना करने मे हम विशेष सुखी होते, परन्तु क्षात्र-धर्म बडा कठोर है। आर्य्य कृतघ्न नही होते। प्रमाण यही है कि मै अनुरोध करता हूँ, यवन-सेना बिना युद्ध के लौट जाय।

सिल्यू०—वाह ! तुम वीर हो, परन्तु मुझे भारत-विजय करना ही होगा। फिर चाहे तुम्ही को क्षत्रप बना दूँ।

चन्द्रगुप्त—यही तो असम्भव है। तो फिर हो युद्ध !

[रणवाद्य, युद्ध, लड़ते हुए उन लोगों का प्रस्थान; आम्भीक के सैन्य का प्रवेश]

आम्भीक—मगध-सेना प्रत्यावर्त्तन करती है। ओह, कैसा भीषण युद्ध है ! अभी ठहरे ? अरे, देखो कैसा परिवर्तन !—यवन-सेना हट रही है, लो, वह भगी।

[चर का प्रवेश]

चर—आक्रमण कीजिये, जिसमे सिन्धु तक यह सेना लौट न सके। आर्य्य चाणक्य ने कहा है, युद्ध अवरोधात्मक होना चाहिए।

(प्रस्थान)

[रणवाद्य बजता है। लौटती हुई यवन-सेना का दूसरी ओर से प्रवेश]

सिल्यू०—कौन ? प्रवचक आम्भीक ! कायर !

आम्भीक—हाँ सिल्यूकस ! आम्भीक सदा प्रवंचक रहा, परन्तु यह प्रवचना कुछ महत्त्व रखती है। सावधान !

[युद्ध—सिल्यूकस को घायल करते हुए आम्भीक की मृत्यु। यवन-सेना का प्रस्थान। सैनिको के साथ सिंहरण का प्रवेश]

"सम्राट् चन्द्रगुप्त की जय !"

[चन्द्रगुप्त का प्रवेश]

चन्द्र०—भाई सिंहरण, बडे अवसर पर आये !

सिंह०—हाँ सम्राट् ! और समय चाहे मालव न मिले, पर प्राण देने का महोत्सव-पर्व वे नही छोड़ सकते ! आर्य्य चाणक्य ने कहा कि मालव

और तक्षशिला की सेना प्रस्तुत मिलेगी। आप ग्रीकों के प्रधान-शिविर का अवरोध कीजिए!

चन्द्रगुप्त—गुरुदेव ने यहाँ भी मेरा ध्यान नहीं छोड़ा! मैं उनका अपराधी हूँ सिंहरण!

सिंह०—मैं यहाँ देख लूँगा, आप शीघ्र जाइए; समय नहीं है! मैं भी आता हूँ।

सेना—महाबलाधिकृत सिंहरण की जय!

[चन्द्रगुप्त का प्रस्थान, दूसरी ओर से सिंहरण आदि का प्रस्थान]

११

शिविर का एक अंश

[**चिन्तित भाव से राक्षस का प्रवेश**]

राक्षस—क्या होगा ? आग लग गई है, वुझ न सकेगी ? तो मैं कहाँ रहूँगा ? क्या हम सब ओर से गए ?

सुवासिनी—(**प्रवेश करके**)—सब ओर से गए राक्षस ! समय रहते तुम सचेत न हुए !

राक्षस—तुम कैसे सुवासिनी !

सुवा०—तुम्हे खोजते हुए वन्दी बनाई गई। अब उपाय क्या है ? चलोगे ?

राक्षस—कहाँ सुवासिनी ? इधर खाई, उधर पर्वत ! कहाँ चलूँ।

सुवा०—मैं इस युद्ध-विप्लव मे घबरा रही हूँ। वह देखो, रण-वाद्य वज रहे हैं ! यह स्थान भी सुरक्षित नही। मुझे बचाओ राक्षस— (**भय का अभिनय करती है**)

राक्षस—(**उसे आश्वासन देते हुए**)—मेरा कर्तव्य मुझे पुकार रहा है। प्रिये, मैं रणक्षेत्र मे भाग नही सकता, चन्द्रगुप्त के हाथो मे प्राण देने मे ही कल्याण है ! किन्तु तुमको.......

[**इधर-उधर देखता है, रण-कोलाहल**]

सुवा०—बचाओ !

राक्षस—(**निःश्वास लेकर**)—अदृष्ट ! दैव प्रतिकूल है। चलो सुवासिनी !

(**दोनो का प्रस्थान**)

[**एकाकिनी कार्नेलिया का प्रवेश**]

(**रण-शब्द**)

कार्ने०—यह क्या ! पराजय न हुई होती तो शिविर पर आक्रमण कैसे होता ?—(**विचार करके**)—चिन्ता नही, ग्रीक बालिका भी प्राण देना जानती है। आत्म-सम्मान—ग्रीस का आत्म-सम्मान जिये !—

(छुरी निकालती है)—तो अन्तिम समय एक बार नाम लेने मे कोई अपराध है ?—चन्द्रगुप्त !

[विजयी चन्द्रगुप्त का प्रवेश]

चन्द्र०—यह क्या !—(छुरी ले लेता है)—राजकुमारी !

कार्ने०—निर्दय हो चन्द्रगुप्त ! मेरे बूढे पिता की हत्या कर चुके होगे ! सम्राट् हो जाने पर आँखे रक्त देखने की प्यासी हो जाती है न !

चन्द्र०—राजकुमारी ! तुम्हारे पिता आ रहे है ।

[सैनिको के बीच में सिल्यूकस का प्रवेश]

कार्ने०—(हाथों से मुँह छिपाकर)—आह ! विजेता सिल्यूकस को भी चन्द्रगुप्त के हाथो से पराजित होना पडा !

सिल्यू०—हाँ बेटी !

चन्द्र०—यवन-सम्राट् ! आर्य्य कृतघ्न नही होते । आपको सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देना ही मेरा कर्तव्य था । सिन्धु के इस पार अपने सेनानिवेश मे आप है, मेरे वन्दी नही ! मै जाता हूँ ।

सिल्यू०—इतनी महत्ता !

चन्द्र०—राजकुमारी ! पिताजी को विश्राम की आवश्यकता है । फिर हम लोग मित्रो के समान मिल सकते है ।

[चन्द्रगुप्त का सैनिकों के साथ प्रस्थान; कार्नेलिया उसे देखती रहती है]

१२

पथ मे साइवर्टियस और मेगास्थनीज

साइ०—उसने तो हम लोगो को मुक्त कर दिया था, फिर अवरोध क्यो ?

मेगा०—समस्त ग्रीक-शिविर वन्दी है ! यह उनके मन्त्री चाणक्य की चाल है। मालव और तक्षशिला की सेना हिरात के पथ मे खडी है, लौटना असम्भव है।

साइ०—क्या चाणक्य ! वह तो चन्द्रगुप्त से क्रुद्ध होकर कही चला गया था न ? राक्षस ने यही कहा था, क्या वह झूठा था ?

मेगा०—सब षड्यंत्र मे मिले थे। शिविर को अरक्षित अवस्था मे छोड़, बिना कहे सुवासिनी को लेकर खिसक गया ! अभी भी न समझे ! इधर चाणक्य ने आज मुझसे यह भी कहा है कि मुझे औंटिगोनस के आक्रमण की भी सूचना मिली है।

[सिल्यूकस का प्रवेश]

सिल्यू०—क्या ? औंटिगोनस !

मेगा०—हाँ सम्राट्, इस मर्म से अवगत होकर भारतीय कुछ नियमों पर ही मैत्री किया चाहते है।

सिल्यू०—तो क्या ग्रीक इतने कायर हैं ! युद्ध होगा साइवर्टियस ! हम सब को मरना होगा।

मेगा०—(पत्र देकर)—इसे पढ़ लीजिये, सीरिया पर औंटिगोनस की चढ़ाई समीप है। आपको उस पूर्व-संचित और सुरक्षित साम्राज्य को न गवाँ देना चाहिए।

सिल्यू०—(पत्र पढ़कर विषाद से)—तो वे क्या चाहते है ?

मेगा०—सम्राट् ! सन्धि करने के लिए तो चन्द्रगुप्त प्रस्तुत है, परन्तु नियम वड़े कडे है। सिन्धु के पश्चिम के प्रदेश आर्य्यावर्त्त की नैसर्गिक सीमा निषध पर्वत तक वे लोग चाहते है। और भी.......

सिल्यू०—चुप क्यों हो गए ? कहो, चाहे वे शब्द कितने ही कटु हों, मैं उन्हें सुनना चाहता हूँ।

मेगा०—चाणक्य ने एक और भी अडगा लगाया है। उसने कहा है, सिकन्दर के साम्राज्य में जो भावी विप्लव है, वह मुझे भलीभाँति अवगत है। पश्चिम का भविष्य रक्त-रंजित है, इसलिए यदि पूर्व में स्थायी शान्ति चाहते हो तो ग्रीक सम्राट् चन्द्रगुप्त को अपना बन्धु बना लें।

सिल्यू०—सो कैसे ?

मेगा०—राजकुमारी कार्नेलिया का सम्राट् चन्द्रगुप्त से परिणय करके।

सिल्यू०—अधम ! ग्रीक तुम इतने पतित हो !

मेगा०—क्षमा हो सम्राट् ! वह ब्राह्मण कहता है कि आर्य्यावर्त्त की सम्राज्ञी भी तो कार्नेलिया ही होगी।

साइ०—परन्तु राजकुमारी की भी सम्मति चाहिए।

सिल्यू०—असम्भव ! घोर अपमानजनक।

मेगा०—मैं क्षमा किया जाऊँ तो सम्राट्...! राजकुमारी का चन्द्रगुप्त से पूर्वपरिचय भी है, कौन कह सकता है कि प्रणय अदृश्य सुनहली रश्मियों से एक-दूसरे को न खींच चुका हो ! सम्राट् सिकन्दर के अभियान का स्मरण कीजिए—मैं उस घटना को भूल नहीं गया हूँ।

सिल्यू०—मेगास्थनीज ! मैं यह जानता हूँ ! कार्नेलिया ने इस युद्ध में जितनी बाधाएँ उपस्थित कीं, वे सब इसकी साक्षी हैं कि उसके मन में कोई भाव है, पूर्व स्मृति है, फिर भी—फिर भी, न जाने क्यों ! वह देखो, आ रही है ! तुम लोग हट तो जाओ !

[**साइवर्टियस और मेगास्थनीज का प्रस्थान और कार्नेलिया का प्रवेश**]

कार्ने०—पिताजी !

सिल्यू०—बेटी कार्नी !

कार्ने०—आप चिन्तित क्यों हैं ?

सिल्यू०—चन्द्रगुप्त को दण्ड कैसे दूँ ? इसी की चिन्ता है।

कार्ने०—क्यो पिताजी, चन्द्रगुप्त ने क्या अपराध किया है ?

सिल्यू०—है ! अभी बताना होगा कार्नेलिया ! भयानक युद्ध होगा, इसमे चाहे दोनो का सर्वनाश हो जाय !

कार्ने०—युद्ध तो हो चुका। अब क्या मेरी प्रार्थना आप सुनेंगे पिताजी ! विश्राम लीजिए ! चन्द्रगुप्त का तो कोई अपराध नही, क्षमा कीजिए पिता ! (**घुटने टेकती है**)

सिल्यू०—(**बनावटी क्रोध से**)—देखता हूँ कि, पिता को पराजित करने वाले पर तुम्हारी असीम अनुकम्पा है !

कार्ने०—(**रोती हुई**)—मैं स्वयं पराजित हूँ ! मैंने अपराध किया है पिताजी ! चलिए, इस भारत की सीमा से दूर ले चलिए, नही तो मैं पागल हो जाऊँगी।

सिल्यू०—(**उसे गले लगाकर**)—तब मैं जान गया कार्नी, तू सुखी हो बेटी ! तुझे भारत की सीमा से दूर न जाना होगा—तू भारत की सम्राज्ञी होगी।

कार्ने०—पिताजी !

[**प्रस्थान**]

१३

दाण्ड्यायन का तपोवन; ध्यानस्थ चाणक्य

[भयभीत भाव से राक्षस और सुवासिनी का प्रवेश]

राक्षस—चारो ओर आर्य्य-सेना ! कही से निकलने का उपाय नही। क्या किया जाय सुवासिनी !

सुवा०—यह तपोवन है, यही कही हम लोग छिप रहेगे।

राक्षस—मै देश-द्रोही, ब्राह्मण-द्रोही बौद्ध ! हृदय काँप रहा है। क्या होगा ?

सुवा०—आर्य्यो का तपोवन इन राग-द्वेषो से परे है।

राक्षस—तो चलो कही।—(**सामने देखकर**)—सुवासिनी ! वह देखो—वह कौन ?

सुवा०—(**देखकर**) आर्य्य चाणक्य।

राक्षस—आर्य्य-साम्राज्य का महामन्त्री इस तपोवन मे !

सुवा०—यही तो ब्राह्मण की महत्ता है राक्षस ! यो तो मूर्खो की निवृत्ति भी प्रवृत्तिमूलक होती है। देखो, यह सूर्य्य-रश्मियो का-सा रस-ग्रहण कितना निष्काम, कितना निवृत्तिपूर्ण है !

राक्षस—सचमुच मेरा भ्रम था सुवासिनी ! मेरी इच्छा होती है कि चल कर इस महात्मा के सामने अपना अपराध स्वीकार कर लू और क्षमा माँग लू !

सुवा०—बडी अच्छी बात सोची तुमने। देखो—

[दोनो छिप जाते है]

चाणक्य—(**आँख खोलता हुआ**)—कितना गौरवमय आज का अरुणोदय है ! भगवान् सविता, तुम्हारा आलोक, जगत् का मगल करे। मै आज जैसे निष्काम हो रहा हूँ। विदित होता है कि आज तक जो कुछ किया, वह सब भ्रम था, मुख्य वस्तु आज सामने आई। आज मुझे अपने अन्तर्निहित ब्राह्मणत्व की उपलब्धि हो रही है। चैतन्य-सागर निस्तरग

है और ज्ञान-ज्योति निर्मल है। तो क्या मेरा कर्म कुलाल-चक्र अपना निर्मित भाण्ड उतारकर धर चुका ? ठीक तो, प्रभात-पवन के साथ सब की सुख-कामना शान्ति का आलिंगन कर रही है। देव ! आज मैं धन्य हूँ।

[दूसरी ओर झाड़ी में मौर्य्य]

मौर्य्य—ढोंग है ! रक्त और प्रतिशोध, क्रूरता और मृत्यु का खेल देखते ही जीवन बीता, अब क्या मैं इस सरल पथ पर चल सकूँगा ? यह ब्राह्मण आँख मूँदने-खोलने का अभिनय भले ही करे, पर मैं ! असम्भव है। अरे, जैसे मेरा रक्त खौलने लगा ! हृदय में एक भयानक चेतना, एक अवज्ञा का अट्टहास, प्रतिहिंसा जैसे नाचने लगी ! यह, एक साधारण मनुष्य, दुर्बल कंकाल, विश्व के समूचे शस्त्र-बल को तिरस्कृत किये बैठा है ! रख दूँ गले पर खड्ग, फिर देखूँ तो यह प्राणभिक्षा माँगता है या नहीं ! सम्राट् चन्द्रगुप्त के पिता की अवज्ञा ! नहीं-नहीं, ब्रह्महत्या होगी, हो ; मेरा प्रतिशोध और चन्द्रगुप्त का निष्कंटक राज्य !—

[**छुरी निकाल कर चाणक्य को मारना चाहता है, सुवासिनी दौड़कर उसका हाथ पकड़ लेती है। दूसरी ओर से अलका, सिंहरण, अपनी माता के साथ चन्द्रगुप्त का प्रवेश**]

चन्द्रगुप्त—(**आश्चर्य और क्रोध से**)—यह क्या पिताजी ! सुवासिनी ! बोलो, बात क्या है ?

सुवा०—मैंने देखा कि सेनापति, आर्य्य चाणक्य को मारना ही चाहते हैं, इसलिए मैंने इन्हें रोका !

चन्द्र०—गुरुदेव, प्रणाम ! चन्द्रगुप्त क्षमा का भिखारी नहीं, न्याय करना चाहता है। बतलाइए, पूरा विवरण सुनना चाहता हूँ, और पिताजी, आप शस्त्र रख दीजिए ! सिंहरण ! (**सिंहरण आगे बढ़ता है**)।

चाणक्य—(**हँस कर**)—सम्राट् ! न्याय करना तो राजा का कर्त्तव्य है; परन्तु यहाँ पिता और गुरु का सम्बन्ध है, कर सकोगे ?

चन्द्र०—पिताजी !

मौर्य्य—हाँ चन्द्रगुप्त, मैं इस उद्धत ब्राह्मण का—सब की अवज्ञा

करनेवाले महत्त्वाकांक्षी का—वध करना चाहता था। कर न सका, इसका दुःख है। इस कुचक्रपूर्ण रहस्य का अन्त न कर सका।

चन्द्र०—पिताजी, राज्य-व्यवस्था आप जानते होंगे—वध के लिए प्राणदण्ड होता है, और आपने गुरुदेव का—इस आर्य्य-साम्राज्य के निर्माण-कर्त्ता ब्राह्मण का—वध करने जाकर कितना गुरुतर अपराध किया है!

चाणक्य—किन्तु सम्राट्, वह वध हुआ नही, ब्राह्मण जीवित है। अब यह उसकी इच्छा पर है कि वह व्यवहार के लिए न्यायाधिकरण से प्रार्थना करे वा नही।

चन्द्रगुप्त-जननी—आर्य्य चाणक्य!

चाणक्य—ठहरो देवी!—(**चन्द्रगुप्त से**)—मै प्रसन्न हूँ वत्स! यह मेरे अभिनय का दण्ड था। मैंने आज तक जो किया, वह न करना चाहिए था, उसी का महाशक्ति-केन्द्र ने प्रायश्चित्त कराना चाहा। मैं विश्वस्त हूँ कि तुम अपना कर्त्तव्य कर लोगे। राजा न्याय कर सकता है, परन्तु ब्राह्मण क्षमा कर सकता है।

राक्षस—(**प्रवेश करके**)—आर्य्य चाणक्य! आप महान् है, मैं आपका अभिनन्दन करता हूँ। अब न्यायाधिकरण से, अपने अपराध—विद्रोह का दण्ड पाकर सुखी रह सकूँगा। सम्राट् आपकी जय हो!

चाणक्य—सम्राट्, मुझे आज का अधिकार मिलेगा?

चन्द्र०—आज वही होगा गुरुदेव, जो आज्ञा होगी।

चाणक्य—मेरा किसी से द्वेष नही, केवल राक्षस के सम्बन्ध मे अपने पर सन्देह कर सकता था, आज उसका भी अन्त हो। सम्राट् सिल्यूकस आते ही होंगे, उसके पहले ही हमे अपना सब विवाद मिटा देना चाहिए।

चन्द्र०—जैसी आज्ञा।

चाणक्य—आर्य्य शकटार के भावी जामाता अमात्य राक्षस के लिए, मैं अपना मन्त्रित्व छोडता हूँ। राक्षस! सुवासिनी को सुखी रखना।

[**सुवासिनी और राक्षस चाणक्य को प्रणाम करते है**]

मौर्य्य--और मेरा दण्ड ? आर्य्य चाणक्य, मैं क्षमा ग्रहण न करूँ, तब ? आत्महत्या करूँगा !

चाणक्य--मौर्य्य ! तुम्हारा पुत्र आज अर्य्यावर्त्त का सम्राट् है--अब और कौन-सा सुख तुम देखना चाहते हो ? काषाय ग्रहण कर लो, इसमे अपने अभिमान को मारने का तुम्हे अवसर मिलेगा। वत्स चन्द्र-गुप्त ! शस्त्र दो अमात्य राक्षस को !

[**मौर्य्य शस्त्र फेंक देता है। चन्द्रगुप्त शस्त्र देता है। राक्षस-सविनय ग्रहण करता है**]

सब--सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य की जय !

[**प्रतिहार का प्रवेश**]

प्रति०--सम्राट् सिल्यूकस शिविर से निकल चुके हैं।

चाणक्य--उनकी अभ्यर्थना राजमन्दिर मे होनी चाहिए, तपोवन मे नही।

चन्द्र०--आर्य्य, आप उस समय न उपस्थित रहेगे ?

चाणय--देखा जायगा।

[**सबका प्रस्थान**]

१४

राज-सभा

[एक ओर से सपरिवार चन्द्रगुप्त, और दूसरी ओर से साइवर्टियस, मेगास्थनीज, एलिस और कार्नेलिया के साथ सिल्यूकस का प्रवेश; सब बैठते हैं]

चन्द्र०—विजेता सिल्यूकस का मै अभिनन्दन करता हूँ—स्वागत !

सिल्यू०—सम्राट् चन्द्रगुप्त ! आज मै विजेता नही, विजित से अधिक भी नही ! मै सन्धि और सहायता के लिए आया हूँ ।

चन्द्र०—कुछ चिन्ता नही सम्राट्, हम लोग शस्त्र-विनिमय कर चुके, अब हृदय का विनिमय .....

सिल्यू०—हाँ, हाँ, कहिये !

चन्द्र०—राजकुमारी, स्वागत ! मै उस कृपा को नही भूल गया जो ग्रीक-शिविर मे रहने के समय मुझे आप से प्राप्त हुई थी ।

सिल्यू०—हाँ कार्नी ! चन्द्रगुप्त उसके लिए कृतज्ञता प्रकट कर रहे है ।

कार्ने०—मै आपको भारतवर्ष का सम्राट् देखकर कितनी प्रसन्न हूँ ।

चन्द्र०—अनुगृहीत हुआ **(सिल्यूकस से)** औंटिगोनस से युद्ध होगा । सम्राट् सिल्यूकस, गज-सेना आपकी सहायता के लिए जायगी । हिरात मे आपके जो प्रतिनिधि रहेगे, उनसे समाचार मिलने पर और भी सहायता के लिए आर्य्यावर्त्त प्रस्तुत है ।

सिल्यू०—इसके लिए धन्यवाद देता हूँ । सम्राट् चन्द्रगुप्त, आज मे हम लोग दृढ मैत्री के वन्धन मे बँधे ! प्रत्येक का दुख-सुख, दोनों का होगा, किन्तु एक अभिलाषा मन मे रह जायगी ।

चन्द्र०—वह क्या ?

सिल्यू०—उस बुद्धिसागर, आर्य्य-साम्राज्य के महामत्री, चाणक्य को देखने की बडी अभिलाषा थी ।

चन्द्र०—उन्होंने विरक्त होकर, शान्तिमय जीवन बिताने का निश्चय किया है ।

[सहसा चाणक्य का प्रवेश, अभ्युत्थान देखकर प्रणाम करते हैं]

सिल्यू०—आर्य्य चाणक्य, मैं आपका अभिनन्दन करता हूँ ।

चाणक्य—सुखी रहो सिल्यूकस, हम भारतीय ब्राह्मणों के पास सबकी कल्याण-कामना के अतिरिक्त और क्या है, जिससे अभ्यर्थना करूँ ? मैं आज का दृश्य देखकर चिर-विश्राम के लिए संसार से अलग होना चाहता हूँ ।

सिल्यू०—और मैं सन्धि करके स्वदेश लौटना चाहता हूँ । आपके आशीर्वाद की बड़ी अभिलाषा थी । सन्धिपत्र . . . .

चाणक्य—किन्तु संधिपत्र स्वार्थों से प्रबल नहीं होते, हस्ताक्षर तलवारों को रोकने में असमर्थ प्रमाणित होंगे । तुम दोनों ही सम्राट् हो, शस्त्र-व्यवसायी हो; फिर भी संघर्ष हो जाना कोई आश्चर्य की बात न होगी । अतएव, दो बालुका-पूर्ण कगारों के बीच में एक निर्मल स्रोतस्विनी का रहना आवश्यक है ।

सिल्यू०—सो कैसे ?

चाणक्य—ग्रीस की गौरव-लक्ष्मी कार्नेलिया को मैं भारत की कल्याणी बनाना चाहता हूँ । —यही ब्राह्मण की प्रार्थना है ।

सिल्यू०—मैं तो इससे प्रसन्न ही हूँगा, यदि........

चाणक्य—यदि का काम नहीं, मैं जानता हूँ, इसमें दोनों प्रसन्न और सुखी होंगे ।

सिल्यू०—(कार्नेलिया की ओर देखता है, वह सलज्ज सिर झुका लेती है)—तब आओ बेटी...........आओ चन्द्रगुप्त !

[दोनों ही सिल्यूकस के पास जाते हैं, सिल्यूकस उनका हाथ मिलाता है । फूलों की वर्षा और जयध्वनि]

चाणक्य—(मौर्य्य का हाथ पकड़ कर)—चलो, अब हम लोग चलें !

यवनिका

स्वर-लिपि

स्वर-योजक

संगीताचार्य्य लक्ष्मणदास

'मुनीमजी'

स्वर-लिपि के संकेत-चिह्नों का ब्योरा

१—जिन स्वरो के नीचे विन्दु हो, वे मद्र सप्तक के ; जिसमे कोई विन्दु न हो, वे मध्य सप्तक के है तथा जिनके ऊपर विन्दु हो, वे तार सप्तक के है । जैसे—स़, स, सं ।

२—जिन स्वरो के नीचे लकीर हो, वे कोमल है । जैसे—रे॒, ग॒, ध॒, नि॒ । जिनमे कोई चिह्न न हो, वे शुद्ध है । जैसे—रे, ग, ध, नि । तीव्र मध्यम के ऊपर खडी पाई रहती है—म॑ ।

३—आलकारिक स्वर (गमक) प्रधान स्वर के ऊपर दिया है, यथा—ध, म

प म प

४—जिन स्वरो के आगे बेडी पाई हो '—' उसे उतनी मात्रा तक दीर्घ करना, जितनी पाइयाँ हो । जैसे—स—, रे—, ग—

५—जिस अक्षर के आगे जितने अवग्रह ऽ हो, उतनी मात्रा तक दीर्घ करना । जैसे—रा ऽ भ, सखी ऽऽ, आ ऽऽऽ ज ।

६—'‿' इस चिह्न मे जितने स्वर या बोल रहे, वे एक मात्रा-काल मे गाए, या बजाए जाएँगे । जैसे स रे, ग म ।

७—जिस स्वर के ऊपर से किसी दूसरे स्वर तक चन्द्राकार लकीर जाय, वहाँ से वहाँ तक मीड समझना । जैसे—स—म, रे—प इत्यादि ।

८—सम का चिह्न ×, ताल के लिए अक और खाली का द्योतक ० है । इनका विभाजन खड़ी लम्बी रेखाओ से दिखाया गया है ।

९—'॰' यह विश्रान्ति का चिह्न है । ऐसे जितने चिह्न हो, उतने मात्रा-काल तक विश्रान्ति जानना ।

(पृष्ठ ६३)

खम्माच—तीन ताल

स्थायी

X	२	०	३
	रे ग	स रे स म	ग ग ग —
	तु म	क न क कि	र ण के ऽ
म — प प	—— प म ग	म म प प	प ध स स
अ ऽ न्त रा	ऽ ल से ऽ	लु क छि प	क र च ल
नि ध प म	ग ——		
ते ऽ हो ऽ	क्यों ऽ		

अन्तरा

X	२	०	३
	ग म	ध — ध ध	ध —— ध ध
	म त	म ऽ स्त क	ग ऽ र्व व
ध नि ध नि	प — ग —	म म प —	प ध सं स
ह न क र	ते ऽ यौ ऽ	व न के ऽ	ध न र स
नि ध प म	ग ——		
क न ढ र	ते ——		

जौनपुरी-टोड़ी—तीन ताल

स्थायी

×	२	०	३
ध॒	प म ग॒ रे॒	स रे॒ म म	रे म प ध
× नि	क ल म त	बा ऽ ह र	दु ऽ बं ल
प — प ध॒	प — प —	ध॒ स — स	स — सरे ग
आ ऽ ह, ल	गे ऽ गा ऽ	तु झे ऽ हूँ	सी ऽ काऽ ऽ
रे स नि॒ स	स स रे —	ग ग रे —	स — नि —
सी ऽ त, श	र द नी ऽ	र द मा ऽ	ला ऽ के ऽ
ध — प प	ग॒ रे स —	रे रे म —	प — ध॒ ध
बी ऽ च त	ड प ले ऽ	च प ला ऽ	सी ऽ भ य
प — प			
भी ऽ त,			

अन्तरा

×	२	०	३
म	म म प —	प ध प ध	मप ध॒ प ध॒
× प	ड़ र हे ऽ	प ऽ व न	प्रेऽ ऽ म फु
स — स नि	नि नि॒ नि॒ नि॒	नि नि स —	निस रें सरे ग
हा ऽ र, ज	ल न कु छ	कु छ है ऽ	मी ऽऽऊीऽ ऽ
रेंस नि॒ध प ध॒	प म ग॒ रे	स रे म म	प — ध॒ —
पीऽ ऽऽ र, स	म्हा ऽ ले ऽ	च ल कि त	नी ऽ है ऽ
स — स ग	ग॒ रे स स	निस रें म ध॒ प	मप ध॒ प म
दू ऽ र, प्र	ल य त क	व्या ऽ ऽऽ कुल	होऽ ऽ न अ
ग रे स			
धी ऽ र			

आगे के चारो पद भी इसी प्रकार से गाए जायँगे।

सिन्ध भैरवी—तीन ताल

स्थायी

X	२	०	३
स	स रे स स	ध नि ध प	ध — नि नि
अ	रु ण य ह	म धु म य	दे ऽ श ह
स — स, स	स रे स स	स स — रे	ग — म म
मा ऽ, रा अ	रु ण य ह,	ज हाँ ऽ प	हुँ च अ न
रे — ग म	ग रे स —	नि स ध प	ध — नि नि
जा ऽ न क्षि	ति ज को ऽ	मि ल ता ऽ	ए ऽ क स
स — स,			
हा ऽ रा,			

अन्तरा

X	२	०	३
स	स रे स स,	स रे स रे	— ग म म
अ	रु ण य ह,	स र स ता	ऽ म र स
रे — ग म	ग रे स स	नि स ध प	ध — नि नि
ग ऽ भें वि	भा ऽ प र	ना ऽ च र	ही ऽ त रु
स स — स	नि स रे ग स स	प प प —	प — प ध
शि खा ऽ म	नो ऽ ऽऽ ह र	छि ट का ऽ	जी ऽ व न
म प ग म	रे ग रे स	नि स ध प	ध — नि नि
ह रि या ऽ	ली ऽ प र,	मं ऽ ग ल	कु ऽ कु म
स — स			
सा ऽ रा,			

मिश्रित भैरवी—कहरवा ताल,

स्थायी

×	२	०	३
रे प्र	स स स — थ म यी ऽ	रे म म म व न म दि	म —पं — रा ऽ से ऽ
ध प प ध॒ म ऽ त्त प्रे	प म रे ग ऽ म क र	स — स रे॒ ने ऽ की ऽ	ग म ग॒ रे थी ऽ प र
स — स, रे॒ वा ऽ ह औ	स स स स ऽ र कि स	र॒ म म — को ऽ दे ऽ	म — प — ना ऽ है ऽ
ध प प ध हृ द य, ची	प म रे ग॒ ऽ न्ह ने ऽ	स — स रे की ऽ न त	ग॒ म ग॒ रे नि क थी ऽ
स — स चा ऽ ह,			

अन्तरा

×	२	०	३
ध बे	म म म — ऽ च डा ऽ	ध॒ — ध॒ — ला ऽ था ऽ	ध॒ ध॒ नि॒ ध हृ द य अ
सं — सं नि॒ मो ऽ ल आ	— नि॒ नि॒ नि॒ ऽ ज व ह	ध॒ — नि॒ नि॒ मा ऽ ग र	नि॒ ध॒ नि स ध॒ — हा ऽ ऽ था ऽ
प — प, म दा ऽ म, वे	ग॒ रे॒ स — ऽ द ना ऽ	रे॒ म — म मि ली तु	म — प प ला ऽ प र
ध॒ प प ध तो ऽ ल, उ	प म रे ग से ऽ लो ऽ	स — स रे॒ भी ऽ ने ऽ	ग॒ म ग रे ली ऽ वे ऽ
स — स, का ऽ म,			

(पृष्ठ १५५)

धुन कजली—कहरवा ताल

स्थायी

×	२	०	३
स	— स नि नि	स — ग ग	ग म प ध
आ	ऽ ज इ स	यौं ऽ व न	के ऽ मा ऽ
ग म — ग	— ग रे —	रे ग म प ग म	रे ग नि स
घ वी ऽ कु	— ज मे ऽ	कों ऽऽऽ कि ल	वो ऽ ल र
रे — —,			
हा ऽ ऽ,			

अन्तरा

×	२	०	३
म॑ म॑ म॑ —	म॑ म॑ म॑ —	म॑ म॑ प प	— — — —
म धु पी ऽ	क र पा ऽ	ग ल हु आ	ऽ ऽ ऽ ऽ
रे रे म॑ —	म॑ प ध नि	प — — —	— — — प,
क र ता ऽ	प्रे ऽ म प्र	ला ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ प,
रे रे रे म॑	म॑ — म॑ —	प — प प	— — — —
शि थि ल हु	आ ऽ जा ऽ	ता ऽ हृ द य	ऽ ऽ ऽ ऽ
रे — म॑ —	म॑ प ध नि	प — प, म	ग रे स नि
जै ऽ से ऽ	अ प ने ऽ	आ ऽ प, ला	ऽ ज के ऽ
स — ग ग	ग म प ध	प — —, म	ग रे स नि,
बं ऽ ध न	खो ऽ ल र	हा ऽ ऽ, आ	ऽ ज इ स;

आगे ऊपर के अनुसार

कजली धुन बनारसी—कहरवा ताल

स्थायी

	२	०	३
स	स रे ग म	रे ग स रे	नि स ध नि
सु	धा ऽ सी ऽ	क र से ऽ	न ह ला ऽ
×			
स — —,			
दो ऽ ऽ,			

अन्तरा

×	२	०	३
ग ग ग —	ग — ग म	रे ग स रे	नि़ नि़ स —
ल ह रें ऽ	डू ऽ व र	ही ऽ हो ऽ	इ स में ऽ,
रे रे रे रे	— ग ग म	रे ग स रे	नि नि़ स —
र ह न जाँ	ऽ य वे ऽ	अ प ने ऽ	व स में ऽ,
प — प प	— प म ग	म प प प	प — ग ० —
रू ऽ प रा	ऽ शि इ स	व्य थि त हृ	द य ० सा ऽ
ग ग ग —	ग स प ध	म — —, रे	रे ग म प
ग र को ऽ	न ह ला ऽ	दो ऽ ऽ, सु	धा ऽ सी ऽ
ग म रे ग	स रे नि़ नि़	स — —,	
क र से ऽ	न ह ला ऽ	दो ऽ ऽ,	

सोहनी—तीन ताल

स्थायी

×	२	०	३
			ग मं ध नि
			कै ऽ सी ऽ
रे स -- नि	नि धनि मरे	स नि ध मं,	मं ध नि,
क ड़ी ऽ प्री	ऽ त की ऽ ऽऽ	ज्वा ऽ ला ऽ,	कै ऽ सी ऽ,
ध ध मं ग	रे स नि स	ग मं ध नि	स रे स --
प ड़ ता ऽ	है ऽ प त	ऽ ग स	इ स में ऽ
प नि स रे	ग रे स स	धनि सरे सनि धप	
म न हो ऽ	क र म त	वा ऽऽऽ ला ऽऽऽ	

अन्तरा

×	२	०	३
			ग म ध नि
			कै ऽ सी ऽ,
मं ग मं ध	नि स रें स	निसं रें ग मं गं	रे स नि ध
सा ऽ न्ध्य ग	ग न सी ऽ	रा ऽ ऽऽ ग म	यी ऽ य ह
रें स — नि	— ध नि ध	मं ध मं ग	मं ग रे स,
ब डी ऽ ती	ऽ न्न है ऽ	हा ऽ ऽ ऽ	ला ऽ ऽ ऽ
नि स ग मं	ध नि रें सं	धनि सरें ग मं	ग रें स —
लो ऽ ह स्तुं	ऽ ख ला ऽ	से ऽ ऽऽ न क	डी ऽ क्या ऽ
नि ध नि ध	मं ग मं ग	गमं धनि सनि धमं	
य ह फू ऽ	लों ऽ की ऽ	मा ऽऽऽ ला ऽऽऽ	

(पृष्ठ १८५)

बिहारी—तीन ताल

स्थायी

×	२	०	३
स	रे ग स स	रे म प ध प म	ग म रे ग
म	धु प क व	ए ऽ ऽ ऽ क क	ली ऽ का ऽ
रे			
स — —, स	रे ग स स	रे म प ध ध ध	ध — प ध
है ऽ ऽ, म	धु प क व	ए ऽ ऽ क क	ली ऽ का ऽ
ग			रे
म प — म	ग स रे रे	स रे म प म ग	स — रे ग
है ऽ ऽ, म	धु प क ब	ए ऽ ऽ क क	ली ऽ का ऽ
रे			
स — —,			
है ऽ ऽ			

अन्तरा

	२	०	३
स	रे ग म स,	म — म —	ग म स रे
म	वु प क व	पा ऽ या ऽ	जि स मे ऽ
×			
म — प ध	ध — — —	प ध स रें ग रे	स ध प म
प्रे ऽ म र	स ऽ ऽ ऽ	सा ऽ ऽ ऽ र भ	औ ऽ र सु
ध — — —	— — — ध,	प ध प म	ग म स रे
हा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ग,	त्रे ऽ क ल	हो ऽ उ स
स रें म ध	— — — —	रे ध प म	ग स रें ग
क ली ऽ से	ऽ ऽ ऽ ऽ	मि ल ता ऽ	भ र अ नु
स — स, स	रे ग म रे	र प म ग	स रे — ग
रा ऽ ग, वि	हा ऽ री ऽ	फु ऽ ज ग	ली ऽ का ऽ
रे			
म — —,			
है ऽ ऽ,			

(पृष्ठ १८५)

कान्हरा—तीन ताल

स्थायी

×	२	०	३
	नि		
म	रे रे स —	नि — स —	नि म रे प
ब	ज र ही ऽ	व ऽ शी ऽ	आ ठो या म
म	नि		
ग — —, म	रे रे म —,	नि स रे स	निस रे ध नि
की ऽ ऽ, ब	ज र ही ऽ,	भ व त क	गूँ ऽऽ ज र
प — म प	स — स —	रे — रे —	रे रे म प
ही ऽ है ऽ	बो ऽ ली ऽ	प्या ऽ रे ऽ	मु ख अ भि
म			
ग — — म	रे — स —,	नि — म —	रे स रे प
रा ऽ ऽ म	की ऽ ऽ ऽ,	व ऽ शी ऽ	आ ठो मा म
म			
म — —,			
की ऽ ऽ			

अन्तरा

×	२	०	३
			नि नि
म	रे रे म —	म प — प	ध ध नि नि
बं	ज र ही ऽ,	हु ए ऽ च	प ल मृ ग
स — म स	रें नि म म	रें रें — रे	र — म प
नैं ऽ न मो	ऽ ह व श	ब जी ऽ वि	प ऽचं ऽ ऽ
म			नि
ग — — म	रें — म —	नि सं रें स	ध नि प —
का ऽ ऽ म	की ऽ ऽ ऽ,	रू ऽ प सु	धा ऽ के ऽ
		स	
म प नि नि	ग म रे स	नि — —	रे रे पम प
दो ऽ टू ग	प्या ऽ लो ऽ	नैं ऽ ही ऽ	म ति वेऽ ऽ
म			
ग — — म	रे — स —,	नि — स —	रे स रे ग
का ऽ ऽ म	की ऽ ऽ ऽ,	व ऽ शी ऽ	आ ठो या म
म			
ग — —,			
की ऽ ऽ,			